वर्ष ६, अंक २

श्रीकृष्णाय नमः

दिसम्बर

कार्तिक, १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक -
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	३३
२.	भक्ति [ले० श्री पं० कालूराम जी शास्त्री	... ...	३४
३.	अभिलाषा (कविता) [ले० श्री पं० बाबूलाल जी भार्गव	... ...	३९
४.	सत्युग आरहा है [ले० श्री पं० राज नारायण पद् शास्त्री	... ...	४०
५.	उपालम्भ (कविता) [ले० श्री रमाशंकर जी मिश्र	... ...	४३
६.	षट् प्रमाण [ले० श्री मा० राम जी आश्रम	... ...	४४
७	भगवान् का भरोसा [ले० श्री विलासराव जी डालमिया	... ...	४७
८.	बौद्धमत के सिद्धान्त [ले० श्रीमती सुविधा देवी आश्रम	... ...	५०
९.	पूर्णावतार (कविता) [ले० श्री बलदेव प्रसाद मिश्र	... ...	५१
१०.	जनक विदेह का जीवन चरित्र [ले० श्री मक्खन मथुरा प्रसाद जी	... ...	५६
११.	श्याम (कविता) [रचियता श्रीश्याम विरही	... ...	५८
१२.	श्री राम चरित मानस में प्रबंध विचित्रता [ले० श्री महावीर प्रसाद जी बंजरंग बली	...	५९
१३.	राम चरित मानस	... ...	६०
१४.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	... ...	६३
१५.	भजन [संग्रहकर्ता प्रबुद्ध ब्रह्मचारी आश्रम	... ...	६४

GITA PRESS, GORAKHPUR

उमा-महेश्वर

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक, ता० १, नवम्बर १९३४ | अंक २ पूर्ण संख्या ६८

वेदोपदेश

अधामन्ने अत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मानो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः॥

हे इन्द्र! अन्तःकरण से हम तुम्हें जानते हैं, तुम्हारे उस बल पर हमने श्रद्धा की है, तुम अभिष्ट दाता हो। हमें प्रभूत धन प्रदान करो। इन्द्र तुम बहुत लोगों के द्वारा आहूत हो, हमें धन विहीन घर में नहीं रखना, भूखों को अन्न और जल दो।

मानो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मानो मघवञ्छक्र निर्भेन्मानः पात्रा भेत् सहजानुषाणि॥

इन्द्र! हमें नहीं मारना, हमें नहीं छोड़ना, हमारे प्रिय भक्ष्य उपयोग आदि नहीं लेना। हे समर्थ इन्द्र! हमारे गर्भस्थित अपत्यों को नष्ट नहीं करना। घुटनों के बल चलने वाले बालकों को नष्ट नहीं करना।

भक्ति

[ले० पं० कालूरामजी शास्त्री]

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजः।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जन प्रियः॥

पिंजरे में पड़े हुये पक्षी की भांति मैं परतंत्र हूं मैं तो भक्तों के आधीन हूं भक्त मुझे जैसी प्रेरणा करेंगे मुझे वैसा ही करना पड़ेगा। श्रेष्ठ भक्तों से मेरा हृदय पकड़ लिया गया है मुझे संसार में भक्त ही प्यारे हैं और मैं उन्हीं के आधीन हूं। भगवान् का यह कथन सर्वांश में सत्य है। उधर गज ने पुकारा कि फौरन आगये, द्रौपदी चिल्लाई कि सभा में कूद पड़े, प्रहाद ने पुकारा पुकारते ही खम्भे से निकल बैठे। ऐसे अवसरों पर भगवान् को प्रेम बंधन में बंद कर कूदना पड़ता है। कहां गई स्वतंत्रता, स्वतंत्रता तो जब जान पड़ती कि गज चिल्लाता रहता और ये हज़रत नींद के खर्राटे लेते। द्रौपदी आसुओं की माला से स्मरण करती और ये भोजन खाते रहते, प्रहाद पुकारा ही करते और ये निराकार बने ही रहते। ज्यों ही भक्त ने पुकारा कि फौरन दौड़े फिर स्वतंत्रता कैसी? ईश्वर को भी अपने वश में करने वाली संसार में कोई वस्तु है तो वह भक्ति है। आज कल सभ्यता के ठेकेदार भक्त को पोपों का हथकंडा कहा करते हैं। ईश्वर अप्रमेय है, अविज्ञेय है, अनिर्वचनीय है, अजित है, इतना होने पर भी वह भक्तों के वश में है इस विषय में वेद के प्रकट करने वाले ब्रह्मा ब्रह्मस्तुति में कहते हैं कि:-

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव,
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु वाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम्॥

भगवन्! आपको श्रुति स्मृति अजित कहती है किन्तु लोग ज्ञान के परिश्रम को छोड़ कर सज्जन से सुनी हुई आपकी कल्याण कारक कथाओं को मन में रख काय, मन, वाणी से प्रतिक्षण आपको नमन करते रहते हैं। इस त्रिलोकी में ऐसे पुरुषों ने आपको जीत लिया है आप ऐसे अनन्य भक्तों के हाथ के खिलौने हो जाते हैं। यद्यपि संसार में असंख्य भक्त हो गये हैं और उन भक्त के प्रेम में आकर प्रभु ने असंख्य बार भारत वर्ष को अपने चरण से पवित्र किया है इतने पर भी कृष्ण अवतार के समय जो भक्ति की छटा व्रज में दिखलाई पड़ी है उस छटा का वर्णन अन्य अवसर पर कहीं पर भी नहीं लिखा गया। इस अलौकी छटा को देख कर एक भक्त कहता है कि:-

धन वृन्दावन धाम है धन वृन्दावन नाम।
धन वृन्दावन रसिक जन सुमिरत राधेश्याम॥
इमन भये व्रज में बड़ यही रही मन आस।
नित प्रति निरखत युगल छवि कर वृन्दावन वास॥
वृन्दावन जे वास कर सोइ पात नित स्नान।
जिनके भाजन को निरखि ब्रह्मादिक ललचात॥

जिस वृन्दावन की छवि पर ब्रह्मादिक

देवता मोहित हो गये उसकी छटा वर्णन करने के लिये किस कवि की लेखनी में शक्ति हो सकती है वृन्दावन की प्रेम धारा को देख कर मुसलमान कवियों ने प्रेम भागरिथी में स्नान किया और कृष्ण के गुणों का गान करते हुये संसार बंधन तोड़ कर अपवर्ग की प्राप्ति कर गये। किन्तु आज कल के हीटल भोजी पत्थर हृदय हिन्दू लीडर भक्ति को ढकोसला और श्रीमद्भागवत् की प्रेम मयी कथा को पोप लीला के नाम से याद करते हैं। कारण इसका यही है कि इन्होंने कभी संस्कृत साहित्य तो देखा नहीं पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ये लोग अपने को यूरोपीय संतान समझने लग गये। वृन्दावन की प्रेम भागरिथी की कथा सुन कर पत्थर हृदय मनुष्य भी गद्गद हो जाता है। इस विषय में ब्रह्मा अपने मुख से स्वयं कहते हैं।

अहोऽति धन्या व्रजगोरमरापः
स्तन्यामृतं पिबति मतं च ते मुदा ।
यासां विभोवत्सतरात्मजात्मना,
यत्तृप्तयऽद्यापि न चालमध्वरा ॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्द गोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम् ॥
तद्भूरि भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां,
यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द,
स्वयाविषत्यदरतः श्रुतिमृग्यमेव ॥

अहो धन्य है व्रज की गौ और गोपियों को एक वर्ष तक कृष्ण ने बछड़े तथा गो बन कर जिनके दूध को आनन्द से पिया और पीकर तृप्त हो गये। जिनको अनेक यज्ञें तृप्त नहीं कर सकीं उनको इन व्रज की गौ तथा गोपियों ने तृप्त कर दिया। अहो हम नन्द व्रज के गोपों के भाग्यों के भाग्यों की क्या प्रशंसा करें परमानन्द पूर्ण सनातन ब्रह्म स्वतः जिनका मित्र बना उनके भाग्य का कौन वर्णन कर सकता है। भगवन् मेरा जन्म इस मनुष्य लोक में हो और मनुष्य लोक में भी गोकुल में किसी कीट पतंग प्रभृति योनि में हो जावे तो मैं अपने को भूरि भाग्य कृतकृत्य मान क्योंकि ऐसे जन्म में किसी भी गोकुल वासी के चरण की रज मेरे ऊपर अवश्य गिरेगी। उस रज से मैं पूर्ण मनोरथ हो जाऊंगा। गोकुल निवासियों का जीवन साधारण जीवन नहीं है किन्तु प्रबल भाग्यशाली जीवन है क्योंकि जिनका सर्वस्व जीवन सर्वाधार आप भगवान्मुकुन्द हैं। आप भी मामूली नहीं हैं आपके चरण रज को श्रुति आज तक ढूंढती ही फिरती है पाती नहीं। ऐसे अलभ्य आप गोकुल निवासियों का जीवन है अतएव गोकुल वासियों की धूलि से मैं अवश्य पूर्ण मनोरथ हो जाऊंगा। देव इन व्रज वासियों को आप क्या देंगे इस विषय में हमारा चित्त घबरा जाता है अधिक से अधिक मोक्ष देवेंगे तब भी आप इनके ऋणि ही रहेंगे पूतना बनावटी सद्वेष से आई थी मोक्ष तो आपने उसको दे दी तो क्या इन व्रज वासियों का पूतना के तुल्य ही आप में प्रेम है। यदि आप यह कहें कि हम इनके परिवार को भी मोक्ष देदेंगे किन्तु वह तो अघासुर बकासुर प्रभृति पूतना के परिवार को भी दे दिया है। फिर आप इनके ऋण को कैसे चुकावेंगे। पूतना तो थोड़ी देरी के लिये बनावटी प्रेम से आपके आगे आई थी और गोकुल निवासियों का गृह, द्रव्य, मित्र, प्रिय आत्मा, पुत्र, प्राण, और देह सब आपके लिये हो गया है फिर आप इनके ऋणी क्यों न रहेंगे। तभी तक ये रागादिक चोर रहते हैं और तभी तक यह घोर जेलर थाना है तथा तभी तक मोह रूपी बेड़ियां पड़ी रहती हैं जब तक कि हे भगवान्

कृष्ण ! यह मनुष्य तेरा नहीं होता।

गोकुल की गौ और गोपियों के प्रेम को आप देख चुके अब एक दृष्टि यशोदा के प्रेम पर डालने की कृपा करें। एक दिन यशोदा की दासियां जब अनेक कामों में लग गईं तब यशोदा की इच्छा हुई कि आज दही हम ही मथलें यह समझ कर दही मथने लगी। इतने में ही रोते हुये भगवान् कृष्ण आये अपने शरीर के चिन्हों से माता को प्रेम में मोहित करते हुये दूध पीने की इच्छा प्रकट करने लगे। यशोदा ने दही का मथना छोड़ दिया और भगवान् कृष्ण को गोदी में लेकर अपना दूध पिलाने लगीं। थोड़ा ही दूध पिया था कि इतने में चूल्हे पर धरा हुआ दूध तेज आग से उफन कर नीचे गिरने लगा इसको देख यशोदा ने भगवान् कृष्ण को नीचे बिठला दिया और आप दूध उतारने चलीं गईं। कृष्ण ने कहा कि ओ हो इसको दूध हम से भी प्यारा है जो हमें नीचे बिठला गईं और आप दूध उतारने चली गईं। रोष में आकर एक पत्थर उठाया उस पत्थर को जोर से दही के बर्तन पर पटक दिया, बर्तन फूट गया दही बिखर गया और समीप में जो मक्खन की हांडी रक्खी थी उसको उठाकर खाने लगे। जब यशोदा दूध उतार कर आई तब उसने यह दधि लीला देखी देखने से मालूम हुआ कि मक्खन की हांडी सर्वथा ही गायब है, इसको भी क्रोध आया कृष्ण को ढूंढने निकली क्या देखा कि एक ओखली पर खड़े हैं और मक्खन की हांडी में से मक्खन निकाल कर बन्दरों को दे रहे हैं। आती हुई यशोदा को इन्होंने भी देखा कि आज हाथ में लकड़ी लिये आ रही है कुछ न कुछ दुर्दशा अवश्य करेगी। यह समझ ओखल से कूद ये भी भागे। आगे २ कृष्ण और पीछे २ यशोदा कृष्ण चाहते हैं कि हम रफूचक्कर होजांय और यशोदा चाहती है कि मैं इनको जल्दी पकड़ लूं व्यासजी लिखते हैं कि--

तामालक्ष्यदधिप्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यम्ब धावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसरितं मनः॥

जिसने हाथ में लड़की ली है ऐसी आने वाली उस माता को देखकर शीघ्रता से ये श्रीकृष्ण जी जिस ओखली पर से नीचे उतर कर डरे हुये से भागने लगे उस समय एकाग्रता से तदाकार हुये और प्रवेश करने को समर्थ हुये योगियों के मन को भी जिसकी प्राप्ति नहीं होती है ऐसे कृष्ण के पकड़ने को यशोदा उनके पीछे २ दौड़ने लगी। यशोदा का शरीर स्थूल है चलती२ थक गई, शरीर में पसीना आगया, केश बन्धन खुल गये, हांफने लगी। इस दशा को देख कर भगवान् को दया आई आप खड़े हो गये। यशोदा ने देखा कि कृष्ण बहुत डर गये घबरा गये यह समझ कर लकड़ी फेंकदी समझा कि लकड़ी से डरते हैं लकड़ी डाल कर कृष्ण के दोनों हाथ पकड़े और इरादा किया कि इसको ओखली में बांध दूं।

न चान्तर्नबहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥
तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंग मधोक्षजम्।
गोपिका लुखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥
तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः।
द्वयं गुलोनमभूत्तेनसन्दधेऽन्यच्च गोपिका॥
यद्यदीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे।
तदपि द्वयङ्गुलं न्यूनं यद्यदात्त बन्धनम्॥
एवं स्वगेह दामानि यशोदा सन्दधत्यपि।
गोपीनां स्मयन्ती विस्मिताऽभवत्॥
स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धने॥
एवं सदर्शिताह्यङ्ग हरिणा नृप्यदशता।

स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरंवशे ॥ ७ ॥
नेमविरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्ग संश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्ति दात् ॥ ८ ॥
नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका सुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्ति मतामिह ॥ ९॥

जिस ब्रह्म के भीतर और बाहर तथा जिसके पूर्व और पर नहीं हैं और जो जगत् के पूर्व है और पर है जो जगत् से बाहर है और जगत् के भीतर है उस अधोक्षज अदृश्य मनुष्य शरीर धारण किये ब्रह्म को गोपी अपना पुत्र समझ कर रस्सी से जैसे लौकिक बालकों को बाँधा करते हैं उसी प्रकार ओखली से बांधने लगी। दही की मटकी फोड़ने का अपराध किया है जिसने ऐसे बच्चे कृष्ण को जब गोपी बांधने लगी तब बांधने की रस्सी दो अंगुल कम हो गई। यशोदा ने दूसरी रस्सी मंगवा कर इस रस्सी में जोड़ दी फिर कृष्ण को लगी बांधने। यह रस्सी भी दो अंगुल छोटी हो गई। फिर तीसरी रस्सी मंगवाई उसको जोड़ कर जब बाँधने लगी तब भी दो ही अंगुल रस्सी छोटी हुई। जितनी रस्सियां उसमें बांधी गई उतनी ही बार बाँधी हुई रस्सी दो अंगुल छोटी हुई। इस प्रकार घर की सब रस्सियां बांध दी गई तब भी बन्धी हुई समस्त रस्सियाँ दो ही अंगुल छोटी हुई तब तो मुस्कराती हुई गोपी आश्चर्य में पड़ गई कि देखो यह छोटा सा लड़का दही मरखन खाके कितना मुटाता है। भगवान् कृष्ण ने देखा कि माता तो हैरान हो गई इसको पसीना आ गया और शिर के केशों में से फूल गिरने लग गये। इस घोर परिश्रम को देख कर भगवान् पहिली ही रस्सी से बन्ध गये। इस प्रकार से भगवान् ने भृत्यवश्यता दिखलाई जिस कृष्ण के वश में सारा संसार है वे कृष्ण भक्त के प्रेम में फंस कर आज उखली में फंस कर उखली में बंधे पड़े हैं। ईश्वर की यह प्रसन्नता ब्रह्मा ने नहीं पाई और न महादेव ने ही। इस प्रसन्नता की उपलब्धि के अंक में रहने वाली लक्ष्मी भी वंचित रही जो प्रसन्नता जगन्नियन्ता मोक्षदाता भगवान् से गोपी को मिली है। इस प्रकार से ब्रह्म भूत देहधारी ज्ञानियों को जगदीश्वर सुख पूर्वक प्राप्त कभी भी नहीं होते जैसे वे भक्त लोगों को बिना आयास मिलते हैं। अब थोड़ी सी कथा उन गोपियों की सुनते हैं जो देवांगना शरीर और स्वर्ग को छोड़ कर भगवान की भक्ति के लिये गोपी शरीर धारण कर मर्त्य लोक में आई है उनकी भक्ति को देख कर मौन रह जाना पड़ता है उनके विषय में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि:—

न मां जानन्ति मुनयो योगिनश्च पारन्तपाः।
न च रुद्रादयो देवा यथा गोप्यो विदन्ति माम्।

हे परन्तप! मुझको उस प्रकार से मुनि नहीं जानते और न योगी जानते हैं तथा न रुद्रादिक देवता ही जानते हैं जिस प्रकार मुझको गोपियां जानती हैं। जब भगवान् ब्रज छोड़ कर मथुरा चले आये तब भगवान् कृष्ण उद्धव से कई बार बोल उठे कि भक्ति तो गोपियों में है। उद्धव इसको सुन कर बड़े हैरान थे कि गांव की रहने वाली बिना लिखी पढ़ी गंवार गोपियां भक्ति को क्या जानें। समय आया और भगवान् कृष्ण ने उद्धव को व्रज में भेजा। उद्धव के व्रज में पहुंचने से नन्दादिक गोप गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ। सब उद्धव के पास आ गये और कृष्ण का कुशल क्षेम पूछने लगे। यशोदा ने कहा कि कृष्ण ने हमारे लिये भी कुछ कहा है उद्धव ने कहा कि लीजिये यह पत्र दिया है उस पत्र में लिखा था कि:—

कामरी लकुट मोहि भूलत न एक पल,

घुंघची ना बिसरों ब्रज की माल उर धारे हैं।
जादिन ते बाकें छूट गई ग्वाल बालन की,
ता दिन ते भोजन न पावत सकारे हैं।
भनै यदुवंश को पै नेह नन्द वंश ही सों,
वंसी ना बिसारो जो पै वंश हू बिसारे हैं।
ऊधौ ब्रज जैयो मेरी कहियो चरन गेंद,
मैया से कहियो हम कलियां तिहारे हैं ॥ २ ॥
कौन बिधि पावे यह कर्म बलवान उदय,
छाछ छहिया की ब्रज भामिनी की भात है,
मुक्ति हूं पदारथ सो दे चुके बकीको अब,
देहुं जननी को कहा यातें पछितात हैं।
बिधि जो बनाई आहि कौन बिधि मेटै ताहि;
ऐसे कर सोचत रहत दिन रात है।
ऊधौ ब्रज जैयो मेरी कहियो समुझाय मैया,
आपै कृष्ण गाहे सो बिदेश चलो जात है ॥ २ ॥

गोपियों ने कहा कि प्रभु ने माता जी के लिये तो पत्र लिखा है यह ना बतलाओ हमारे लिये भी कुछ कहा है। उद्धव ने उत्तर दिया कि तुम्हारे लिये भी एक पत्र दिया है इतना कह कर उद्धव ने गोपियों को पत्र दिया उसमें लिखा था कि:-

जैसे तुम दीन्हों तन मन धन प्राण मोहि,
तैसे ही समाधि साथ ध्यान धर पाओगी।
अलख अनाथ घट २ को निवास मोहि,
ज्ञान अविनाशी जोग जुगत जनाओगी।
आसन के प्राणायाम साधि ध्यान धारण से,
ब्रह्म को प्रकाश रस रास दर्साओगी।
ऐसे बिन जाओगी तो सुख में समाओगी,
जो मुक्ति पद पाओगी हमारे पास आओगी ॥

उद्धव के चलते समय गोपियों ने कृष्ण को भेजने के लिये अपना संदेशा दिया वह यह है:-

पूर्ण ब्रह्म सर्वदा सब व्यापक,
हमहुं यह जानती हैं।
नन्दलाल बिना पै बिहाल सबै,
हरिचन्द्र न जानहिं ठानती हैं।
तुम ऊधो यही कहियो उनसे,
हम और कछू नहिं जानती हैं।
प्रिय प्यारे तिहारे निहारे बिना,
अंखिया दुखिया नहि मानती हैं ॥

श्याम तन श्याम मन श्याम ही हमारो धन,
आठों याम ऊधो हमें श्याम ही सें काम है।
श्याम हिये श्याम जीये श्याम बिन नाहिं तीये,
आंधरे की लाकड़ी अधा नाम श्याम है।
श्याम गति श्याम मति श्याम ही है प्राण पति,
श्याम सुखदाई सों भुलाई सोना धाम है।
ऊधो तुम भये बीर पाती लाये दौरे दौरे,
योग कहां राखें यहां रोम रोम श्याम है ॥

गोपियों की यह दशा देख कर उद्धव दंग रह गये और ब्रह्म ज्ञान का सारा अभिमान खोकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि:-

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य पथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

हे परमात्मन्! मेरी इच्छा है कि आगे को जो मुझे जन्म मिले तो मैं इस वृन्दावन में गुल्मलता औषधि अर्थात् या तो छोटा सा झाड़ बन जाऊं या कोई बेल बूटी बन जाऊं जिसके बनने से गोपियों का चरणरेणु मेरे ऊपर पड़े तो मैं कृतार्थ हो जाऊं। जिस बात को ऊद्धवने कहा था उसी बात को रसखान कह रहा है।

मानस हौं तो वही रसखान,
बसौं मिल गोकुल गोप के गंवन्।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो,

चारों नित नन्द की धेनु मझारन्।
पाहन हों तो वही गिरि को,
जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन॥
जो खग हों तो बसेरो करौं,
वाही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

इस इतिहास से सिद्ध है कि "धन वृन्दावन धाम है धन वृन्दावन नाम" किसी कवि का कहना बहुत ही ठीक है। इसमें न तो मिथ्यत्व दोष है और न हुड़दंग बाजों ही का काम है जब तक जीव भक्ति के पंजे में नहीं पड़ेगा तब तक जन्म मरण रूपी बन्धन से छुटकारा न होगा। भक्ति ही मनुष्य जन्म का सार है समस्त मनुष्यों का यह धर्म है कि संसारी काम करते हुये धीरे २ ईश्वर के चरणों में प्रेम लगावें यही हमारी अन्तिम प्रार्थना है हम आज के व्याख्यान को समाप्त करते हुये ईश्वर से निवेदन करते हैं कि:-

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां,
हस्तौच कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत्प्रणामे,
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

भगवन्! हमारी जो वाणी है वह आपके गुणों के कथन में लगे, हमारे कानों की प्रवृत्ति आपकी कथा के श्रवण में लगे, हमारे हाथ आपके श्रृंगारों के कार्यों में रहें, हमारा मन आपके चरणारविन्द में लग जांय, हमारा जो शिर है वह भी आपके चरणों में झुके तथा हमारी जो दृष्टि है वह आप के शरीर के दर्शनों में लगी रहे। शुभम्। बोलिये भगवान् कृष्ण चन्द्र की जय।

"अभिलाषा"

[साहित्यरत्न पं० बाबूलालजी भार्गव बी० ए०]

नहीं है आज, बने बनमाल, कृष्ण-उर-आभूषण अभिराम।
याकि मंजुल मयूर का पंख, भले ही धरें न सिर पर श्याम॥
न पाऊं पीताम्बर का रूप, भले ही बनूं न वन की धेनु।
सघन-यमुना-तट-केलि-निकुंज, याकि हरिके चरणों की रेनु॥
पियूं मैं अधरासव अनमोल, वेणु बन, बजूं करें स्वर क्षीण।
हृदय की करुणा भरी गुहार, "प्राणधन राधे! आओगी न?"

सत्युग आरहा है।

(ले० श्री राम नारायण जी षट् शास्त्री)

मैं प्रथम चेतावनी में लिख चुका हूं कि कलियुग समाप्त हो रहा है और कल्कि अवतार के रूप में भगवान् प्रकट होने वाले हैं। अब हम सबको केवल भक्ति का प्रचार करना चाहिये इत्यादि। इस पर मैंने शास्त्रों की अन्वेषणा की कि कलियुग तो ४ लाख ३२ हज़ार वर्षों का है यह शीघ्र ही कैसे समाप्त होने वाला है तो यह निश्चय किया कि शास्त्रों में तो ठीक है परन्तु इस कठिन विषय का मर्म न समझ कर टीकाकारों ने उलटा हिसाब लगाया है। अब मैं प्रबल प्रमाण जनता तथा विद्वानों के सामने रखता हूं। मनुस्मृति अ० १ श्लोक ६५।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
रात्रिस्वप्नाय भूतानां चेष्टा यै कर्मणामहः ॥६५॥

अर्थ--सूर्य मनुष्यों और देवताओं के रात दिन का विभाग करता है सोने को रात और काम करने को दिन है।

इस श्लोक से पता लगता है कि आगे मनुष्यों और देवताओं दोनों का ही हिसाब चलेगा।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टा ह्यहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥

अर्थ--मनुष्यों के एक मास के बराबर पितरों का एक रात दिन होता है कृष्ण पक्ष दिन कर्म करने को और शुक्ल पक्ष रात सोने को है।

यहां मनुष्यों और पितरों का भेद बताया है।

दैवरात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७॥

अर्थ--मनुष्यों के वर्ष का देवताओं का एक दिन रात होता है ६ मास का उत्तरायण दिन है और ६ मास का दक्षिणायन रात है।

यहां मनुष्यों और देवताओं का हिसाब बताया गया अब मनु जी लिखते हैं।

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥६८॥

अर्थ--ब्रह्मा के रात दिन और एक युग का परिमाण संक्षेप से बताते हैं। अर्थात् अब मनुजी ब्रह्मा का रातदिन और एक २ युग का परिमाण बताते हैं पितरों और देवताओं का हिसाब पहले कहा जा चुका है अब जो युगों का हिसाब आयेगा वह केवल मनुष्यों का है। क्योंकि देवलोकों में चार युग नहीं होते नहीं तो वहां कलियुग भी होगा और इस युग में पाप भी होगा परन्तु देव लोकों में पाप नहीं होता इस अगले श्लोक का भेद न जानकर टीकाकारों ने बड़ी भूल खाई है। अब ध्यान पूर्वक पढ़ें।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

अर्थ--चार हज़ार वर्षों के पश्चात् सत्युग है उसकी उतने ही सैंकड़ों की संध्या है और उतने ही सैंकड़ों का संध्यांश है।

अर्थात् सन्ध्या के ४०० और सन्ध्यांस के ४०० वर्ष यह ८०० वर्ष ऊपर के ४००० में मिलाए तो ४८०० वर्ष कलियुग के हुए ।

टीकाकारों ने भूल से यह सत्युग के वर्ष समझ लिए और "तत्कृत युगम्" के 'तत्' शब्द पर विचार नहीं किया। जिसका अर्थ है 'तदनन्तरात्' अर्थात् उसके पीछे, किसके पीछे? ४८०० वर्षों के पीछे कृतयुग अर्थात् सत्युग आता है और कलियुग के पीछे ही सत्युग आया करता है । इस गुत्थी को न जानकर कई पुस्तकों में 'तत्कृतं' की जगह "तुकृत" यह पाठ बदल दिया गया है अब इससे अगला श्लोक मिलाओ।

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

अर्थ-सन्ध्या और सन्ध्यांशों सहित अन्य तीन युगों का परिमाण एक हजार और एक सौ कम पूर्वक घटाने से होता । अर्थात् ४००० में से एक हजार घटाओ तो ३००० रहे। ४०० वर्ष की सन्ध्या और ४०० वर्ष के सन्ध्यांश से एक एक सैकड़ा घटाया तो ६०० हुआ इसी प्रकार शेष २४०० और १२०० हुए। टीकाकारों ने जब 'तत्' शब्द पर विचार न करके ४८०० का सत्युग समझा तो उनके हिसाब से ३६०० का त्रेता २४०० का द्वापर और १२०० का कलियुग हुआ । तब उन्होंने सोचा होगा कि कलियुग के तो कई हजार वर्ष टीका करने के समय तक ही व्यतीत हो चुके हैं तो १२०० वर्षों का कलियुग हो नहीं सकता। तब उन्होंने बिना किसी प्रमाण के १२०० को ३६० से गुणा करके कलियुग को ४३२००० कर दिया। परन्तु ठीक हिसाब से चारों युगों के १२००० वर्ष होते हैं और कलियुग के १२०० वर्षों को ३६० से गुणा किया जाए तो वह ४३२००० दिन होंगे । कलियुग तो फिर भी १२०० वर्षों का ही रहा। वास्तव में कलियुग ४८००, द्वापर ३६००, त्रेता २४००, और १२०० वर्षों का सत्युग होता है, यह सब १२००० वर्षों की चतुर्युगी कहलाती है ।

तद्वैवपरिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ-पहिले जो चार युगों को बताया है उनके १२००० वर्षों के बराबर देवताओं का एक युग होता है। यही चार युगों की १२००० वर्षों की संख्या इस श्लोक में आती है न कि ४३२००० दिनों की, वह देवताओं का एक युग है ऐसे ही सूर्य सिद्धान्त में आता है "तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्" १२००० वर्षों की चतुर्युगी होती है।

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

अर्थ-देवताओं के हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही रात है। अर्थात् १२००० × ३६० = ४३२०००० दिन यह देवयुग हुआ और ४३२०००० × १००० = ४३२०००००० दिन यह ब्रह्मा का एक दिन है। इसी को सृष्टि सम्वत् कहते हैं इतनी ही ब्रह्मा की रात अर्थात् महा प्रलय होती है। युगों के अलग२ दिन बताने ठीक नहीं है ।

मनु के ऊपर लिखे श्लोक ६९ में "तत्कृतं युगम्" का मतलब यही है कि ४८०० वर्षों के पश्चात् कृतयुग अर्थात् सत्युग आता है। वह ४८०० वर्ष कलियुग के हैं सत्युग के नहीं इसकी पुष्टि में श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय २ श्लोक ३४ है ।

दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ।
भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥

अर्थ-तुर्य के ४००० वर्षों के आगे पुनः (फिर) सत्युग आता है जो मनुष्यों के मन और आत्मा को प्रकाश देने वाला होगा।

यहाँ टीकाकार "दिव्याहानां" के फेर में पड़कर दिव्य शब्द का अर्थ "देवता" कर बैठे और प्रसङ्ग को नहीं देखा। गीता ४। ६ "जन्म कर्म च मे दिव्य" ११। ८ "दिव्यं ददामि ते चक्षुः" क्या यहां भी "दिव्य" शब्द का अर्थ "देवता" लिया जाएगा? अथर्व वेद १९। ८। १ में आता है "यानि नक्षत्राणि दिव्यान्तरिक्षे" क्या यहां भी दिव्य शब्द का अर्थ "देवता" होगा। यहाँ पर सूर्य अर्थ है। गीता में तेजोमय सूर्य है भागवत में सूर्य अर्थ है अर्थात् सूर्य के वर्ष जो संक्रान्ति से चलते हैं और मानव वर्ष में ३६० दिनों का एक वर्ष होता है। "दिव्य" शब्द के अर्थ यह भी हैं स्वर्ग की चीज़, मनोहर, आकाश, ज्योति, चन्दन, लौंग, और दिव्य भगवान कृष्ण को भी कहते हैं 'देवता का" कदापि अर्थ नहीं है। प्रसङ्ग देखकर अर्थ किया जाता है। भागवत् और मनुस्मृति में जहाँ मनुष्य वर्षों का प्रसङ्ग स्पष्टरूप से चल रहा है तो देवताओं का अर्थ लगाना बड़ी भारी भूल है, इस प्रकार अर्थों का बड़ा अनर्थ करके लोगों को अन्धकार में डाल रखा है।

भागवत में पहिले कलियुग का लम्बा चौड़ा वर्णन आता है तब यह श्लोक दिया गया है। बुद्धि से स्पष्ट रूपेण पता लगता है कि जिस कलियुग का वर्णन ऊपर आया है वही ४००० वर्षों का है उससे आगे "पुनः" सत्युग आयेगा। इन ४००० में ८०० वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांश को मिलाकर वही ४८०० वर्ष कलियुग के होते हैं यहां "पुनः" शब्द पर भी विचार नहीं किया गया। न युगों का क्रम समझा गया, भागवत ३। ११ में आता है।

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च॥

अर्थ—सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह क्रम पूर्वक होते हैं ऐसे ही क्रम पूर्वक इनकी संख्या १०००, २०००, ३०००, ४००० होती है, इस श्लोक के क्रम से भी सत्युग के १००० वर्ष होते हैं अगले श्लोक के अनुसार संध्या संध्यांश मिलाने से सत्युग के १२०० त्रेता के २४०० द्वापर के ३६०० और कलियुग के ४८०० वर्ष हुए और यह युग देवताओं के नहीं मनुष्यों के हैं श्लोक २१ में स्पष्ट बताया है कि—

धर्म चतुष्पान्मनुजान्कृतेसमनु वर्तते।
स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता॥ २१॥

अर्थ—सत्युग में मनुष्यों में चार पाद में रहता है फिर अन्य युगों में एक एक पाद कम होता जाता है। इससे ही स्पष्ट सिद्ध है कि चारों युग मनुष्यों के हैं देवताओं के नहीं। देव लोकों में धर्म सदैव समान रहता है न वहां चार युग ही होते हैं। यह कलियुग आया था तो सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे आज कल कृतिका नक्षत्र में हैं। वह एक नक्षत्र में १०० वर्ष तक रहते हैं मघा से कृत्तिका बहत्तालीसवां नक्षत्र है। अतः ४८०० वर्ष हो चुके हैं अब कलियुग समाप्त है और कलियुग की समाप्ति ठीक कब होगी इस पर बड़ा स्पष्ट प्रमाण है भागवत स्कन्ध १२ अध्याय २ श्लोक २४।

यदाचन्द्रश्च सूर्यश्च तथातिष्यबृहस्पती।
एकराशा समेष्यन्ति तदा भवति तत्कृतम्॥

अर्थ—जब चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्य नक्षत्र में एक राशि में सम होकर आएंगे तब 'तत्कृतम्' उससे आगे सत्युग होता है। यहां भी "तत्" शब्द पड़ा हुआ है। यह पूर्ण योग सम्वत् २००० विक्रम श्रावण अमावस्या रविवार तदनुसार १ अगस्त १९४३ ईस्वी को आने वाला है। दश वर्षीय पंचांग छप चुके हैं हर एक मनुष्य देख सकता है। सम का भावार्थ श्रीधर ने अपनी भागवत टीका में लीखा है कि

'जब यह तीनों ग्रह एक राशि में एक ही समय आएं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीधर ज्योतिष नहीं जानते थे तीन ग्रह एक ही समय एक राशि में आ ही नहीं सकते और न "सम" इसे कहते हैं। बात यह है कि उस दिन सूर्य, चन्द्र बृहस्पती कर्क राशि में पुष्य नक्षत्र के ठीक चौथे चरण के अन्तिम भाग में होंगे इसे "सम" अवस्था कहते हैं। उस योग के पश्चात् सत्युग का आरम्भ हो जायगा, परन्तु भक्त वत्सल कल्कि भगवान् उस समय से पहले ही प्रकट हो जाएंगे। भक्त जनों का अहोभाग्य है कि उन को श्री भगवान् के दर्शनों का सौभाग्य शीघ्र प्राप्त होने वाला है।

आजकल तारा मण्डल भी बहुत मध्यम पड़ता हुआ बदल रहा है। इस कारण खून की वर्षा, सूर्य को घूमते हुए देखा जाना, अनेक रोग, अथवा अकाल मृत्यु आदि की अनेक घटनाएं हो रही हैं। ध्रुव भी बहुत मध्यम पड़ गया, सप्तर्षि भी धीमे पड़ रहे हैं। कारण यह है कि यह तारागण सत्युग में बहुत चमकदार होंगे, तब कलियुग जैसे फल उनके नहीं होते यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु पण्डित लोग ऐसे विचार करने का कष्ट उठाते ही नहीं। मैंने यूरोप और अमेरिका के साइंस दोनों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराया है कि वह ओज़ारों से देख कर विचार करें कि तारागणों में यह बड़ा भारी परिवर्तन क्यों हो रहा है? मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि दुनियां में एक बड़ा युद्ध होने वाला है उसके अन्त में बरतानिया की विजय होगी और तत्पश्चात् भारत वर्ष से बाहर का एक देश और एक शहर समुद्र में डूब जाएंगे।

शास्त्रों की टीकाएं बहुत से स्थलों पर भिन्न भिन्न इसलिए मिलती हैं कि टीकाकारों ने केवल अपनी २ बुद्धि के अनुसार टीका की है। यदि गुरु से उन तत्वों को जान लिया जाता तो सभों की टीका टिप्पणी में कोई भेद न होता, न टीकाकार इतने भ्रम में पड़ते, न उनकी टीकाओं से जगत इतने अन्धकार में पड़ता कि कलियुग की समाप्ति में ६ वर्षों से भी कम रह गए हैं। संसार में बड़ा भारी परिवर्तन होने वाला है और लोगों को कुछ पता तक नहीं है।

महन्तों, साधुओं और पण्डितों का धर्म है कि वह प्रचार करें। अब आराम से बैठने का समय नहीं है। राजों महाराजों को भी स्वयं भक्ति करनी चाहिये और अपनी प्रजा को भी ध्यान दिलाना चाहिये। सब जगत के हिन्दु मुसलमान, ईसाई तथा मनुष्य मात्र को अपने २ तरीके पर जगत पिता भगवान् का स्मरण करना आवश्यक है। सनातन धर्म सभाओं को अब सुरीले गाने और लच्छेदार व्याख्यानों को रोक कर भक्ति करनी और इसका प्रचार करना चाहिये। अपने २ नगरों में प्रतिदिन घर घर कीर्तन कराए।

उपालम्भ।

[ले श्री० रमाशंकर जी मिश्र "अपूर्ण"]

डूबता हूँ चाहे डूबने दो मुझे दीनबन्धु, चाहे भवसिन्धु से सहारा दे उबारलो।
या तो भक्तवत्सल भुलादो भक्त-भक्तिभाव, अथवा बनाई-बनी बानि ही बिसारलो॥
खेलते हो खेल मेरा जीवन खिलौना जान, बात यह कैसी निज चित्त में विचारलो।
हरते रहो कृपा की कोर से सदा ही या सो करुणा निधान निठुराई उर धारलो॥

षट् प्रमाण

[ले० श्री महात्मा राम]

गतांक से आगे

अनुमान प्रमाण

चिन्मय व्यापितंसर्वं त्रैलोक्य सचराचरम्।
अस्तिपं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'लिंग ज्ञान जन्यं ज्ञानम् अनुमितिः' लिंग के ज्ञान से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को अनुमिति 'प्रमा' कहते हैं। जैसे "अयं पर्वतः वह्निमान् धूमवत्वात्, यो यो धूमवान्स वह्निमान् यथा महानसः" यह पर्वत वह्नि वाला है धूम वाला होने से। जो जो धूम वाला होता है वह वह्नि वाला ही होता है जैसे महानस है। भोजन बनाने के स्थान को महानस कहते हैं। इस अनुमान में पर्वत पक्ष है, वह्नि साध्य है, धूम लिंग है, महानस दृष्टान्त है,। यह पर्वत धूम वाला है इस प्रकार के ज्ञान से अनन्तर यह पर्वत वह्नि वाला है। इस प्रकार का अनुमिति ज्ञान होता है। इस अनुमिति को वैदिक वाक्यों में दिखलाते हैं। "जीवः ब्रह्माभिन्नः सच्चिदानन्द लक्षणत्वात् ब्रह्म वत्" यह जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न है सत् चित् आनन्द रूप होने से जो जो सत् चित् आनन्द रूप होता है वह ब्रह्म से अभिन्न ही होता है। जैसे ब्रह्म सत् चित् आनन्द रूप होने से ब्रह्म से अभिन्न है वैसे जीवात्मा भी सत्चित् आनन्द रूप होने से ब्रह्म रूप ही है। इस अनुमान में जीव पक्ष है, ब्रह्मात्मा का अभेद साध्य है, सच्चिदानन्द लक्षणत्व 'लिंग' है, ब्रह्म दृष्टान्त है। य० जीवात्मा सत् चित् आनन्द रूप है इस प्रकार के लिंग ज्ञान के पश्चात् अधिकारी पुरुष को यह जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न है इस प्रकार का अनुमिति ज्ञान होता है। अनुमिति ज्ञान से पूर्व काल में इस पुरुष को जिस पदार्थ में 'साध्य' का संशय होता है, वह पदार्थ 'पक्ष' कहा जाता है। जैसे इस प्रसिद्ध अनुमान में पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमिति से पूर्व इस पुरुष को पर्वत में अग्नि का संशय था। इसलिये पर्वत 'पक्ष' कहा गया है। तथा धूम रूप लिंग के द्वारा पर्वत रूप पक्ष विषेय अग्नि रूप 'साध्य' का ज्ञान होता है अर्थात् यह पर्वत अग्नि वाला है ऐसा अनुमिति ज्ञान होता है। इसलिये धूम 'लिंग' कहा जाता है। और लिंग तथा साध्य दोनों का जिस पदार्थ में निश्चय होता है वह पदार्थ दृष्टान्त कहा जाता है। जैसे अग्नि तथा धूम दोनों का सहचार भोजन बनाने की जगह देखा है इसलिये महानस दृष्टान्त है।

'व्याप्याश्रय लिंगम्'

साध्य वस्तु की व्याप्ति के आश्रय को लिंग कहते हैं। जैसे इस अनुमान में अग्नि रूप साध्य की व्याप्ति का आश्रय धूम है। इसलिये धूम लिंग कहा जाता है। लिंग, साधन, हेतु, ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। अब व्याप्ति का स्वरूप

कहते हैं।

'साधन साध्यो र्नियत सामानधिकरण्यं व्याप्तिः'।

साधन साध्य दोनों का नियम से जो सामानाधिकरण्य है। उसको 'व्याप्ति कहते हैं। जैसे धूम तथा वह्नि दोनों का नियम से सामानाधिकरण्य है। अर्थात् वह्नि रूप साध्य को छोड़ कर धूम रूप साधन कदाचित् भी नहीं रह सकता। यह ही धूम विषय वह्नि की 'व्याप्ति' है। वह्निनाम अग्नि का है। वह्नि तो धूम को छोड़ कर तप्त लोह पिण्ड में रहती है इसलिये वह्नि में धूम की 'व्याप्ति नहीं है। वह्नि के व्याप्ति का आश्रय होने से धूम 'व्याप्य' है और वह्नि 'व्यापक है। धूम वह्नि के व्याप्य, व्यापक भाव रूप सहचार का 'महानस, में बार बार देखा जाता है इसलिये महानस 'दृष्टान्त है। महानस में धूम अग्नि के सहचार दर्शन से पर्वत में धूम को देख कर अग्नि का ज्ञान होता है। यहाँ धूम तथा अग्नि का जो व्याप्ति ज्ञान है वह तो अनुमिति का करण होने से 'अनुमान प्रमाण, है और अनुमिति 'प्रमा' फल है। यह अनुमिति प्रमा स्वार्थानुमिति, परार्थानुमिति इस भेद से दो प्रकार की होती है। दूसरे के उपदेश बिना ही व्याप्तिलिंग आदि के ज्ञान से जो, अनुमिति 'प्रमा' होती है वह स्वार्थानुमिति 'प्रमा' कही जाती है जिसको ऊपर कह चुके हैं। और जिसने स्वयं निश्चय कर लिया हो वह किसी दूसरे को निश्चय करावे उसको परार्थानुमिति 'प्रमा' कहते हैं। वह परार्थानुमिति 'प्रमा' न्याय द्वारा सिद्ध होती है। अवयवों के समुदाय को न्याय कहते हैं। नैयायिक मतानुसार प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, उपनय, निगमन, इन पंच अवयवों को न्याय कहते हैं। जैसे प्रसिद्ध अनुमान "वह्नि पर्वतो वह्निमान्" यह प्रतिज्ञा वाक्य है १ 'धूमत्वात्' यह हेतु वाक्य है २ 'यो यो धूमवान्स वह्निमान यथा महानसः' यह उदाहरण वाक्य है ३ 'तथा चायम्' यह पर्वत उस महानस की न्याई धूम वाला है। यह उपनय वाक्य है ४ 'तस्मात्तथा' धूम वाला होने से यह पर्वत उस महानस के समान अग्नि वाला ही है यह निगमन वाक्य है। ५ इस प्रकार के प्रतिज्ञादिक पंच अवयवों के समुदाय रूप न्याय से दूसरे पुरुष को भी व्याप्ति लिंग, आदि के ज्ञान से वह्नि की अनुमिति होती है। यह परार्थानुमिति वैदिक वाक्यों में इस प्रकार है।

'जीवः परस्मान्न भिद्यते १, सच्चिदानन्द लक्षण त्वात् २, यः सच्चिदानन्द लक्षणः स परस्मान्न भिद्यते यथा परमात्मा ३, तथा चायम् ४, तस्मात्तथा ५ यह जीव परमात्मा से भिन्न नहीं है यह 'प्रतिज्ञा' वाक्य है १। सत् चित् आनन्द रूप होने से यह 'हेतु' वाक्य है २। जो जो सच्चिदानंद लक्षणों वाला होता है वह परमात्मा से भिन्न नहीं होता जैसे परमात्मा है यह उदाहरण वाक्य है ३। यह जीवात्मा परमात्मा के समान सत् चित् आनंद रूप है यह 'उपनय, वाक्य है। सत् चित् आनन्द रूप होने से यह जीव परमात्मा से अभिन्न ही है यह 'निगमन' वाक्य है ५। यहां कोई अनभिज्ञ पुरुष तो यों कहते हैं कि यह जीवात्मा सच्चिदानन्द रूपत्व हेतु जीव रूप पक्ष में आवृत्ति होने से 'स्वरूप सिद्ध नामा हेत्वाभास है अर्थात् यह जीवात्मा सत्चित् आनन्द रूप नहीं है इसलिये ब्रह्म से भी भिन्न है। ऐसी शंका के प्राप्त हुए।

जीवात्मा की सत् चित् आनन्द रूपता श्रुति स्मृति आदि प्रमाणों से सिद्ध करते हैं। 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा सन्मात्रो निरः शुद्ध बुद्धः'

मैत्रेयी के प्रति याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि अरे मैत्रेयी! यह आत्मा अविनाशी है, तथा

सत्यस्वरूप है, नित्य है, शुद्ध है, और ज्ञान स्वरूप है, अनन्त है।

अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति । आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति योऽयं विज्ञान मयः ।

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ताभोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥

इस स्वप्न अवस्था में यह आत्मा ही स्वयं ज्योति है अर्थात् स्वप्न अवस्था में सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों के अभाव हुए भी केवल आत्म रूप ज्योति ही सर्व व्यवहार होता है। इस शरीर का आत्मा ही ज्योति है, यह आत्मा विज्ञान रूप है, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं में विश्व, तैजस, प्राज्ञ, ये तीन भोक्ता हैं तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, यह तीन भोग्य पदार्थ हैं। इन सबों से विलक्षण जो चैतन्य मात्र साक्षी आत्मा है वह कल्याण स्वरूप मैं हूं। इस प्रकार की अनेक श्रुतियों से आत्मा की सत्य रूपता तथा ज्ञान रूपता सिद्ध है। आत्मा की आनंद रूपता भी।

'यो वै भूमा तत्सुखम् । नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥'

देश, काल, वस्तु, परिच्छेद रहित जो आत्मा है वह ही सुख रूप है। यदि आत्मा आनंद रूप नहीं होता तो अपान, प्राण तथा देह इन्द्रियादिकों के व्यापार को कौन करता। किन्तु कोई भी नहीं। जिस कारण सर्व भूतों का जीवन सुख पूर्वक ही होता है। अति दुःख प्राप्त होने पर प्राणों का वियोग ही होजाता है।

'योऽन्तः सुखोऽन्तरा रामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः'

यह गीता स्मृति भी आत्मा को आनंद रूप तथा ज्ञान रूप कहती है। अथवा मैं कदाचित् भी अप्रिय नहीं होऊं इस प्रकार के अनुभव से भी आत्मा आनंद रूप ही प्रतीत होता है। सर्व लोकों को अपना आत्मा कभी भी अप्रिय नहीं होता है किन्तु सबको अपने आत्मा में परम प्रीति होती है। तथा सुषुप्ति से उठे हुए पुरुष को मैं सुखसे सोया था इस प्रकार की स्मृति होती है। वह स्मृति बिना अनुभव के नहीं हो सकती सुषुप्ति में कोई इन्द्रिय जन्य विषय सुख तो है नहीं। जिस कारण विषय जन्यसुख के साधन रूप इन्द्रियों का तथा तम आदि सर्व पदार्थों का अपने कारण भूत अविद्या में लय प्राय होजाता है। उस अवस्था में सर्व प्रपंच के अभाव होने पर केवल एक आत्मा ही शेष रहता है। आत्मा स्वयं ही आनंद रूप है इसी आत्मा के आनंद को जागने पर स्मरण करता है कि मैं बड़े सुख से सोया था कुछ भी खबर नहीं रही। कुछतो वहां पर थाही क्या केवल आत्मा था और अज्ञान था इसी अज्ञान के कारण नहीं जाना कि यह आत्मा का ही सुख है कोई भी अपने आपको अप्रिय नहीं चाहता इस कारण भी आत्मा आनंद रूप है। इत्यादिक श्रुति स्मृति युक्त अनुभव से आत्मा की आनंद रूपता सिद्ध है। इस प्रकार सत् चित् आनंद रूपत्व हेतु जीवात्मा रूप पक्ष में वर्तने वाला होने से स्वरूपासिद्ध नामा हेत्वा भास नहीं है। किन्तु सत् हेतु है। इस अनुमान में ब्रह्मात्मा का अभेद साध्य है और ब्रह्म दृष्टान्त है। यद्यपि ब्रह्म की दृष्टान्त रूपता किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है क्योंकि दृष्टान्त सर्वत्र पक्ष से भिन्न होता है तथापि जीव ब्रह्म का कल्पित भेद मान कर ही ब्रह्म को दृष्टान्त रूप से कथन किया है। जिस पुरुष ने ब्रह्म वेत्ता गुरु के मुखसे श्रद्धा भक्ति पूर्वक वेदान्त शास्त्र का श्रवण किया है तथा तत्त्व पदार्थ का शोधन किया है उसी को अपने आत्मा में सत् चित् आनंद रूप हेतु से 'अहंब्रह्मास्मि' इस प्रकार की जीव ब्रह्म

के अभेद विषयक अनुमिति 'प्रमा' उत्पन्न होती है वेदान्त शास्त्र के सहकारिता करके ही अनुमान को प्रमाण कहता है स्वतन्त्र नहीं जिस अर्थ को वेदान्त शास्त्र प्रतिपादन करता है उसी अर्थ को अनुमान भी सिद्ध करे वहां अनुमान वेदान्त का सहकारी कहा जाता है।

'नेह नानास्ति किंचन। वाचारंभणं विकारो नाम धेयम्। माया मात्र मिदं द्वैतं'।

इत्यादिक श्रुतियों से जैसे प्रपंच का मिथ्यापना सिद्ध है तैसे अनुमान से भी प्रपंच का मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

'व्यवहारिकः प्रपंचः मिथ्याहदृश्यत्वात् शुक्ति रूप्यवत्'

यह आकाशादि प्रपंच मिथ्या है दृश्यका होने से शुक्ति में रजत के समान। इस अनुमान से अधिकारी पुरुष को सर्व प्रपंच में मिथ्यात्व की अनुमिति 'प्रमा' उत्पन्न होती है। अर्थात् ब्रह्म से भिन्न सर्व जगत् को मिथ्या जानता है।

अपूर्णम्

भगवान् का भरोसा

[ले०—श्री विलासराय जी शालमियां]

गतांक से आगे

सौ वर्ष के लगभग हुये लोग कलकत्ता, बम्बई की तरह अजमेर उज्जैन, रतलाम, नया नगर, आदि दिसावरों में कमाने के लिये जाया करते थे। एक वैश्य इन्हीं दिसावरों में ही धन कमा के अपने देश मेड़ते आ रहा था। उस समय रेल नहीं थी। हवाई जहाज मोटर लारियां भी नहीं थी ऊंटों की सवारियां थी और सैकड़ों कोसों का रास्ता ऊंटों से ही तय करना पड़ता था। इस वैश्य को भी अपने ग्राम पहुंचने के लिये एक हमनदार हथियार बन्द, ऊंट वाले राजपूत के ऊंट की आवश्यकता थी। किन्तु दो तीन दिन के तलाश करने पर भी किसी अच्छे ऊंट वाले की मिसल नहीं लगी। एक आदमी देखने में हट्टा कट्टा और हथियार बन्द और जिसके पास एक अच्छा तेज चलने वाला ऊंट भी था उनसे बराबर मिलता था और उनसे कहता रहता था कि आप हमारा ऊंट करलें हम आपको मेड़ते अच्छी तरह पहुंचा देंगे। किन्तु सेठ की स्त्री का उसके ऊपर विश्वास नहीं होता था। उसने अपने पति से कह दिया था कोई और अच्छा आदमी मिलेगा उसका ऊंट करेंगे। एक दो दिन की देरी हो तो कोई हरज नहीं किन्तु इसका ऊंट नहीं करना। इधर सेठ को और ऊंट नहीं मिले। आखिर एक दिन उस ऊंट वाले ने कहा भाई! तुम मेरा ऊंट क्यों नहीं करते हो मैं तुम्हारे साथ किसी तरह का दगा नहीं करूंगा, मैं भी तुम्हारे ही ग्राम मेड़ते का रहने वाला

है, इसी लिये अपने ग्राम की ही सवारी लेनी चाहता है और तुरको विश्वास दिलाता है कि हमारे तुम्हारे बीच में श्री गोविन्ददेव जी हैं। हम तुमको अच्छी तरह तुम्हारे ग्राम पहुंचा देंगे। सेठ और सेठानी दोनों ही परमात्मा के भक्त थे जब ऊंट वाले ने गोविन्द देव जी को बीच में दे दिया तो उनको भी विश्वास हो गया की जब भगवान् की साक्षी से कहता है तो अब कोई डर नहीं, इसका ऊंट कर लेना चाहिये। उन्होंने उसका ऊंट कर लिया और चलने को तय्यार हो गये। उस ऊंट वाले ने कहा शाम को चलेंगे आपको किसी तरह का डर नहीं। जब मैं हथियार बान्धे हुये साथ हूं तो किसी समय चलें कोई कुछ नहीं कर सकता। बिचारे सेठने भगवान् के नामसे उसकी सब बातों पर विश्वास कर लिया और सेठानी ने भी कहा कि अब किसी तरह शङ्का करने की आवश्यकता नहीं अपने तो भगवान् की साक्षी है सब बातों को वह आपही संभाल लेंगे। ऊंटवाले ने शामको उनको ऊंट पर चढ़ा कर लेजाने की तय्यारी की। सेठने एकबार फिर कहा कि भाई! इस समय चलना अच्छा नहीं। किन्तु सेठानी ने फिर सेठसे कहा की अब जो बात तै होगई उसमें किसी तरह की मीन मेष लगानी ठीक नहीं। चलो सब परमात्मा अच्छी करेंगे। सेठने बात मानली और चल दिये। रातका समय था। कुछ दूर चलने पर जब जङ्गल और पहाड़ आये वहां उस ऊंट वाले ने कहा अब इस जगह जरा ऊंट बिठालो और आप लोग भी उतर कर पेशाब वगैरा करलो। सेठके दिलमें, कुछ शंका हुई, उसने कहा इन पहाड़ों में से निकलकर करेंगे किन्तु वहां तो रंगही और था। उस ऊंटवाले ने कहा इसी जगह करना होगा। बिचारे सेठ और सेठानी ऊंट परसे उतरगये सेठ पेशाब करने के लिये एक तरफ जाकर बैठा ही था की उस ऊंट वाले ने तलवार निकालकर सेठ जी का काम तमाम करदिया। धड़ से सेठ जी का सर अलग होगया। तब सेठानी ने देखा की ऊंट वाले ने तो भयानक दगा किया। सेठको मार दिया, तब बड़ी जोर से चिल्लाने लगी कि नाथ! मैं इस दुष्ट ऊंटवाले को पहले ही जान गई थी किन्तु आपको बीच में देने पर मैंने इसको ऊंटकिया। प्रभो! इस जङ्गल और पहाड़ों की खो में अब आपके सिवाय मेरा कौन रक्षक है। जब वह सेठानी इस तरह से रोने लगी तो उस दुष्ट ऊंटवाले ने झिड़क कर कहा खबरदार जो गति सेठकी हुई वही तेरी भी होगी नहीं तो चुपरह और मेरे साथ चल। माल असबाब तो सब ज्यों का त्यों है ही। अब मैं तेरा पति हुआ। जब उस साध्वी स्त्री ने सोचा कि अब तो मामला और भी भयानक होगया किन्तु कोई उपाय नहीं, रोती है तो मारी जाती है, चुप रहती है तो रहा नहीं जाता। भीतर ही भीतर वही प्रभू का चिंतवन। नाथ! मैं आपके भरोसे से ठगी गई। यदि आपको बीचमें यह दुष्ट नहीं देता तो मैं कदापि अपने पति को इसके साथ आने के लिये नहीं कहती। बस एक मात्र यह चिन्ता करती रही। उस दुष्ट ने वहां ठहरना उचित न समझा उस बिचारी अनाथ अबला को ऊंटपर बिठा कर चल दिया। किन्तु वह तो रोती सुबकती हुई एक मात्र यही कहती थी नाथ! क्या आपका विश्वास करने पर भी मेरी ऐसी दुर्दशा! प्रभो! क्यों अपने नामको लजाते हो। नाथ! मुझ अनाथिनी की रक्षा करो। बस भगवान् का हृदय भी द्रवीभूत होगया। इतना कष्ट! अपने ऊपर भरोसा करने वाले की इतनी दुर्दशा! क्या स्वामी कभी देख सकते हैं! बिचारी अबला ऊंटवाले के जाल में फंसी हुई

क्रन्दन करती हुई जारही है पीछे से एक घुड़सवार हाथ में चमचमाता हुआ भाला लिये, गले में तलवार लटकाये दौड़ता हुआ आया और उस ऊंट के पीछे २ चलने लगा और बोला 'ओ ऊंटवाले कहां जायगा और कहां से आया है ! तेरे पीछे जो यह स्त्री बैठी है यह कौन है ! उस ऊंटवाले ने तुरंत जवाब दिया तू पूछने वाला कौन होता है। जा अपने रास्ते सीधे से चला जा नहीं तो अभी सब चाल भुल दूंगा। घुड़ सवार ने कहा बस ठहरजा मैं भी राजपूत हूं अब तो आगे तभी जाने दूंगा जब तू अपना सब हाल बतादेगा। ऊंटवाला कब मानने वाला था। उसने तुरंत म्यान में से लपलपाती हुई तलवार निकाली और आगन्तुक घुड़सवार पर वार करना ही चाहता था कि उस घुड़सवार ने ऐसी फुरती से उसकी छाती में अपना भाला मारा कि उसका काम तमाम कर दिया। अब सेठानी और भी घबराई उसने देखा एक बला से पिण्ड छुड़ाही नहीं था अब यह दूसरी बला और आई। बिचारी का हृदय उबल आया और फूट २ कर रोने लगी। "नाथ ! कब आवोगे। प्रभो ! मैं क्या देख रही हूं ! आपका भरोसा करने का क्या यही फल है ?" उस घुड़ सवार ने कहा बाई तू क्यों रोती है, मुझे सच २ बता यह कौन था, तू कौन है और तू इस तरह से क्यों रोती है ? तू मेरी बहिन के समान है तुझे किसी तरह का अब डर नहीं, तू जहां कहेगी मैं तुझे पहुंचादूंगा किन्तु मुझे सब बातें बता यह बात क्या है। सेठानी को कुछ ढाढस हुआ और बोली, भाई ! क्या कहूं भगवान् के भरोसे मेरी इतनी दुर्दशा हुई ! इतना कहकर फिर रोने लगी। घुड़ सवार ने फिर कहा इस तरह रोने से क्या होगा ? भगवान् के भरोसे पर रहने वाले की कभी दुर्दशा नहीं हो सकती। मैं तो इस बात को नहीं मानता किन्तु तू मुझे बता किस तरह तेरी दुर्दशा हुई और तैंने किस तरह भगवान् का भरोसा किया ? उस रोती हुई अबला ने अपना सब हाल आद्योपान्त उसको बता दिया और फिर वैसे ही रोने लगी। घुड़ सवार ने कहा तेरे पति की मृतक देह कहा है ? अबला ने पीछे लौट कर कहा कि देखिये यह मृतक शरीर पड़ा हुआ है। घुड़ सवार ने कहा अच्छा तुम इस का सर उठाकर इसके धड़से लगादो और इसको एक चादर उढ़ादो। उस सेठानी ने रोते हुये ऐसा ही किया। घुड़ सवार ने कहा तू बराबर रोरही है इसलिये अभी रोने की तेरी और भी वासना है। अच्छा अब तू जी खोलके रो जितना तेरे से रोया जासके रो और उस भगवान् को याद करके रो जिसको बीचमें देने से तेरी यह दशा हुई। भगवान् करुणा सिन्धु हैं वह करुणा सागर शीघ्र दया करेंगे। इसलिये अब रोने का तुझे समय दिया जाता है जितनी शक्ति हो रोले। बस अब क्या था करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा दुःखी हृदय जब रोने बैठता है तो पत्थर भी फटजाते हैं। उसने जो क्रन्दन किया व अकथनीय है। रोते २ उस बिचारी का गला रुंध होगया। अब रोया भी नहीं जाता पछाड़ खाखाकर कहने लगी 'नाथ ! तूने यह क्या किया।' पतिकी मृतदेह सामने पड़ी है बियाबान जङ्गल और पहाड़ों के नलों के बीचमें डाकुओं से सताई हुई एक अबला की क्या दशा हो सकती है वह पाठक स्वयं ही विचार करें। घुड़ सवार ने कहा देवी ! बस कर भगवान् तेरे ऊपर प्रसन्न होगये अब तू मत रो और वह देख तेरे पति की मृतदेह हिल रही है। तू उनको अपने हाथ से दुपट्टा दूर करके उठा और विनयकर स्वामी ! जङ्गल में इस तरह निधड़क मुझे एकेली छोड़ कर सोगये। किन्तु खबरदार ! उनका सर न हिलने पावे। सेठानी ने

जलदी से अपने पति की लाश के पास ला करके उस चादर को खींचा इसीमें कुछ सर हिल गया किन्तु ज्योंही उसने चादर खींचकर कहा बहुत देर सोये अबतो उठो त्योंही वह रामराम करता हुआ उठ बैठा जैसे रातको सोया हुआ मनुष्य प्रातः स्मरण करता हुआ उठता है। उठते ही सेठानी ने देखा सेठका सर कुछ टेढा है। घुड़ सवार ने कहा भाई! अब यहां ठहरना उचित नहीं चलो अपने रास्ते। सेठने जब देखा की यह तो कोई दूसरा ही आदमी है और वह ऊंट वाला मरगया है तो सेठानी से कहने लगा यह मैं क्या देखता हूं बता सच सच बता। तो सेठानी ने सब हाल, उसके मारे जाने का और घुड़सवार के आने का बता दिया सेठका सर कुछ टेढा रह गया था वह प्रत्यक्ष प्रमाण था, बस सेठने उठकर घुड़ सवार का पांव पकड़ लिया और कहने लगा ठाकुर साहब जिस तरह आपने हमारे घातकी इस दुष्ट से हमारी रक्षा की है अब कृपा करके हमारे गांव मेड़ते तक हमको पहुंचा आइये। घुड़ सवार ने कहा भाई! अब तुम्हें किसी तरह का डर नहीं है, चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। घुड़ सवार उनके साथ मेड़ते तक गया। अब मेड़ता दिखाई देने लगा तो कहने लगा अब मैं जाऊं तुम्हारा गांव तो आगया सेठने कहा अच्छा आपको तकलीफ तो बहुत हुई अब पधारिये। घुड़ सवार तो वहां से अन्तरध्यान होगया और वे मेड़ते पहुंचे जब पीछे की घटना याद आई तब समझ में आया की घुड़ सवार कौन था? मेरे तुच्छ जीवन के लिये स्वामी को इतनी तकलीफ हुई यह समझ कर सेठने उस पूंजी से मेड़ते में एक चतुर्भुज नाथ का मन्दिर बनवाया और उस दिन से भगवान् की सेवा में लग गये। आज तक वह मन्दिर मेड़ते में मौजूद है और भगवान् के भरोसे पर रहने वालों की भावनायें प्रकट करता है।

प्रेमी पाठक! विचार करें कि भुजाओं के बलपर अकड़े हुये संसार में अपने जीवन को व्यर्थ खोना चाहिये या परमात्मा के भरोसे पर रहकर अपने को उनके अर्पण करके उन्हींका होकर उन्हींके भरोसे पर जीवन निर्वाह करना चाहिये।

बौद्धमत के सिद्धान्त

[ले० श्रीमती सुविधा देवी आश्रम]

बहुत बड़ी तपश्चर्या और ज्ञान के अनन्तर गौतम ने बुद्ध की पदवी लाभ की। उनके मत का नाम बौद्ध है। उनका विश्वास था कि बाहर के आडम्बर सब मिथ्या हैं। धर्म आत्मा की वस्तु है और वह सबके लिये एक जैसी है। उसमें जात पांत का कोई भेद नहीं, और वस्तुतः जात पांत का कोई भेद ही नहीं सब मनुष्य एक जैसे हैं। जो जैसा करता है वैसा बनता है। मनुष्य को सदा सबके लिए शिव संकल्प होना चाहिये। केवल मनुष्य के ही लिए नहीं किन्तु प्राणीमात्र के लिये, इसी में

उसका अपना कल्याण है। अहिंसा, किसी को पीड़ा न पहुंचाना परम धर्म है। पशुओं का बलिदान पाप है; इस जगत् में सब कुछ अस्थाई है, तृष्णा दुःख का मूल है। तृष्णा को काटने से निर्वाण मोक्ष मिलता है। बुद्धदेव के पीछे जब उनकी शिक्षा पर दार्शनिक विचार उठे तो बुद्धों के चार भेद हुए। सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक। भेद का विषय बाह्य अर्थ अर्थात् पदार्थ और विज्ञान है। चारों के मत में विज्ञान ही आत्मा है इनमें से सौत्रान्तिक और वैभाषिक दोनों बाहर की वस्तुओं को भी मानते हैं पर योगाचार केवल विज्ञान को मानता है और बाहर की वस्तुओं से इन्कार कर देते हैं। और माध्यमिक सब कुछ शून्य ही मानते हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों में जगत् को क्षण २ में बदलने वाला और मिथ्या कहा है और विज्ञान की धारा को चित्त का अभिज्वलन-जलना, चमकना मानकर मोक्ष को उसका निर्वाण-बुझना माना है। इसका तात्पर्य समझने में और व्यवस्था करने में चारों का भेद हुआ है। सौत्रान्तिक और वैभाषिक कहते हैं कि बिना बाह्य अर्थों के उनका ज्ञान ही नहीं हो सकता। अतएव बाह्य अर्थ भी हैं और क्षण भंगुर होने से स्वप्नवत् मिथ्या भी हैं। योगाचार मानते हैं कि वस्तुतः मिथ्या ही हैं। मिथ्या की भी प्रतीति स्वप्न की न्याई होती है। पर वस्तुतः यह विज्ञान के ही आकार हैं अब मुक्ति में तीनों का यह मत है कि रागद्वेषादि जो वासना हैं इनसे चित्त का अभिज्वलन होता है इन वासनाओं का उच्छेद ही निर्वाण-बुझना है न कि विज्ञान की धारा का बुझना। पर माध्यमिक मानते हैं कि विज्ञान की धारा भी बुझजाती है तब वह सारी व्यवस्था इस तरह पर करते हैं। हीन, मध्यम, और उत्कृष्ट बुद्धि वाले शिष्य होते हैं उनमें से जो हीन मति वाले हैं उनको भगवान् ने उनकी वासना के अनुसार सर्वास्तित्ववाद के द्वारा शून्यता में उतारा है। पर जो मध्यम बुद्धि वाले हैं उनको साक्षात् ही शून्यता का उपदेश किया है। प्रत्यक्ष और अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं। क्योंकि इन दोनों से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। इन्द्रिय जनित ज्ञान प्रत्यक्ष है। परलोक में जिसको प्रत्यक्ष कहते हैं वह प्रत्यक्ष नहीं वरंच अनुमान होता है। जैसे वृक्ष को देखकर यह वृक्ष है यह जो ज्ञान हुवा है लोक में उसको प्रत्यक्ष कहा जाता है यह प्रत्यक्ष नहीं। प्रत्यक्ष उतना मात्र है जिसमें वृक्ष की कल्पना नहीं अर्थात् यह नहीं जाना कि यह वृक्ष है किन्तु उसका आलोचन मात्र हुवा है। यह वृक्ष है ऐसा ज्ञान तब होता है जब वृक्ष जाति और उस जाति की व्यंजक आकृति का संबंध उस दृश्यमान वस्तु में कल्पना करलिया जाता है। इस कल्पना से पहले जो ज्ञान हुवा है जिसमें दृश्यमान वस्तु किसी संबंध वाली प्रतीत नहीं हुई वह कल्पना अपोढ़ (रहित) ज्ञान प्रत्यक्ष है। इसके पीछे जो वृक्ष की कल्पना वाला ज्ञान उत्पन्न होता है वह अनुमान है। दूसरा प्रमाण अनुमान है जहां अविनाभाव (उसके बिना न होने का नियम) पाया जाय वहां अनुमान होता है। अविनाभाव का नियम तत् उत्पत्ति-उससे उत्पन्न होना और तादात्म्य तत्स्वरूप होना इन दो हेतुओं से जाना जाता है। तत् उत्पत्ति से जैसे धूम अग्नि से उत्पन्न होता है। अग्नि के साथ उसके अविनाभाव का नियम है वह कभी अग्नि के बिना नहीं हो सकता। इसलिये धूम से अग्नि का अनुमान होता है। तादात्म्य में जैसे गोत्व पशुत्व के बिना नहीं हो सकता इसलिये गोत्व से पशुत्व का ज्ञान होता है। कल्पना से रहित निर्विकल्प कार्य अपने कारण का और तत्स्व-

रूप अपने व्यापक रूपका अनुमान कराता है। कोई कहे अनुमान प्रमाण नहीं तो उससे पूछो तुम्हारी इस प्रतिज्ञा का साधक कोई साधन हेतु है या नहीं। यदि नहीं तो तुम्हारी प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं हो सकती और यदि है तो यही अनुमान बन गया। दो प्रकार का जगत है बाह्य आभ्यन्तर। बाह्य भूत और भौतिक रूप है और आभ्यन्तर चित और चैत्य रूप है। पृथ्वी धातु, जलधातु तेजो धातु और वायु धातु ये चारों भूत हैं। रूपादि विषय और नेत्रादि इन्द्रिय भौतिक भूतों का कार्य है। आवर्णाभावमात्र रोक का न होना मात्र आकाश है। पृथ्वी के परमाणु कठिन स्वभाव वाले, जलके स्निग्ध स्वभाव वाले, तेज के उष्ण स्वभाव वाले और वायु के ईरण चलने के स्वभाव वाले हैं इन परमाणुओं से बना हुवा यह जो भूत भौतिक बाह्य जगत है यह इनका संघात मात्र है। पार्थिव परमाणुओं का पुंज ही पृथ्वी है और पुंज ही वृक्षादि हैं। पृथ्वी आदि परमाणुओं से भिन्न कोई अलग वस्तु नहीं बनगये किन्तु एक संस्थान (तरतीब) विशेष में परमाणुओं का ही ढेर है। जैसे मनुष्य समुदाय में सेना और वृक्ष समुदाय में वन में एकत्व बुद्धि होती है। इसी प्रकार यहां भी समुदाय में एकत्व बुद्धि होती है। परमाणुओं का समुदाय यदि वृक्ष है तो उसका प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिये। क्योंकि परमाणु प्रत्यक्ष नहीं है? उत्तर-जैसे दूर से एक बाल प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि बालों का समुदाय प्रत्यक्ष होजाता है। इसी प्रकार अलग २ परमाणुओं के अप्रत्यक्ष होने पर भी परमाणु समुदाय प्रत्यक्ष होता है। बाहर और अन्दर जो कार्य हो रहे हैं उनमें कोई अलग चेतन ईश्वर कर्ता नहीं किन्तु सारे कारणों के मिल जाने पर कार्य अपने आप हो जाता है। इसको प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं। प्रतीत्य समुत्पाद दो कारणों से होता है। हेतूपनिबन्ध से और प्रत्ययोपनिबन्ध से। हेतूपनिबन्ध एक कारण का संबन्ध और प्रत्ययोपनिबन्ध कारण समुदाय का संबंध। जैसे अंकुर की उत्पत्ति बीज से होती है। यह उत्पत्ति में हेतुनिबंध है। और मिट्टी पानी आदि कई वस्तुओं के मेल से उत्पन्न होती है उसे प्रत्ययोपनिबंध कहते हैं। हेतु निबंध का उदाहरण बीज से अंकुर, अंकुर से पद्म, पद्म से काँड, काँड से नाली, नाली से गर्भ, गर्भ से शूक, शूक से फूल, फूल से फल उत्पन्न होता है बीज के न होते हुये अंकुर नहीं होता। इसी प्रकार फल पर्यन्त जानो। इस उत्पत्ति में बीज को यह ज्ञान नहीं होता कि मैं अकुँर उत्पन्न कर रहा हूं अंकुर को भी यह ज्ञान नहीं होता कि मैं बीज से उत्पन्न किया गया हूं वा किया जा रहा हूं। इसी प्रकार पुष्प फल पर्यन्त जानों। बीजादिकों में स्वयं चेतना के न हुये और अन्य चेतन अधिष्ठाता के न होते हुये भी कार्य कारण भाव का नियम दीखता है यह हेतु निबंध कहा है। अब प्रत्ययोपनिबंध का उदाहरण दिखलाते हैं। छः धातुओं के मेल से बीज अंकुर का हेतु बनता है पृथ्वी धातु बीज के संग्रह अवयवों को इकट्ठा रखने का काम करती है। जिससे अंकुर कठिन होता है जल धातु स्निग्ध करता है, तेजो धातु पकाता है, वायु धातु फुलाता है। जिससे के अंकुर बीज से निकलता है। आकाश धातु के अनावर्ण न रोकने का काम करता है। ऋतु बीज का परिणाम करता है। इनसारे धातुओं के संबंध से बीज उगते हुये अंकुर उत्पन्न होता है। अन्यथा नहीं। यहां पृथ्वी धातु को यह ज्ञान नहीं होता है कि मैं बीजके संग्रह का काम कर रहा हूं एवं ऋतु पर्यन्त जानों। क्षणिक कार्य और दुःख स्वभाव पदार्थों में स्थायी नित्य और सुख बुद्धि अविद्या है

उससे राग द्वेष और मोह या संस्कार होते हैं उन संस्कारों से गर्भस्थ को पहला विज्ञान उत्पन्न होता है। उस विज्ञान से गर्भीभूत गर्भ बने हुये शरीर की कलल बुद्बुदादि अवस्था नाम रूप है। नाम रूप से मिले हुये इन्द्रिय पटायतन नाम रूप और पूर्वोक्त उपादान है। इन्द्रियों का आपस में सन्निपात संयोग स्पर्श उससे सुखादि वेदना उससे मुझे सुख संपादन करना चाहिये यह निश्चय तृष्णा है। इससे वाणी और शरीर की चेष्टा की प्रवृत्ति से धर्म और अधर्म भव उससे देह का जन्म जाति, उत्पन्न हुए देह का पकना जरा देह का नाश मरण है। मरते हुए का पुत्रादि के विषय में अन्तर्दाह शोक है। उससे हा! पुत्र इत्यादि विलाप परिदेवना है। अनिष्ट का अनुभव दुख और मानसी व्यथा का नाम दौर्मनस्य है एवमादमानादि आध्यात्मिक कार्य होते हैं। यहां अविद्या अगर न होती तो संस्कार उत्पन्न नहीं होते। जरा मरणादि न होते जाति यदि नहीं होती। अविद्या को यह ज्ञान नहीं होता कि मैं संस्कारों को उत्पन्न कर रही हूं। न संस्कारों को कि हम अविद्या से उत्पन्न किये गये हैं। यह हेतु निबन्ध जानो अब अध्यात्मिक काय में प्रत्यय-निबंध कहते हैं। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश और विज्ञान धातुओं के मेल से शरीर बनता है पृथ्वी धातु काय को कठिन बनाती है जल स्निग्ध करता है, तेज खाये पीये को पचाता है। वायु धातु काय का श्वासादि करता है। आकाश कायको छिद्र वाला और जो नाम रूप को और मनो रूप विज्ञान को बनाता है वह विज्ञान धातु कहलाता है। विज्ञानादि धातु समग्र होते हैं तब सबके संबन्ध से कायकी उत्पत्ति होती है यह ज्ञान नहीं होता कि इन काय को कठिनता आदि बनारहे हैं। कायको भी यह ज्ञान नहीं होता मैं इन कारणों से बनाया जा रहा हूं। पृथ्वी आदि अचेतन धातुओं से बिना किसी चेतन अधिष्ठाता के अंकुर की नाई कायकी उत्पत्ति होती है। यह प्रतीत्य समुत्पाद है। यहाँ किसी चेतन की आवश्यकता नहीं कारणों के मिलने पर अपने आप कार्य उत्पन्न होता है। इतना मात्र दृष्ट होने से चेतन नहीं हो सकता अतएव हेतुओं का समवधान करने वाला अवश्य कोई चैतन्य निमित्त चाहिये। जड़ अपने आप आकर इस सामंजस्य से इकट्ठे नहीं हो सकते। यदि ऐसा कहो तो इसका उत्तर यह है हेतुओं का समवधान उपसरण प्रत्यय निकट लाने वाले कारण से होता है। जैसे कारण को पाकर कार्य अपने आप होता है वैसे उन कारणों का इकट्ठा होना भी इकट्ठा करने वाले कारणों से अपने आप होता है। इनके इकट्ठा करने वाले कारणों को उपसरण प्रत्यय कहते हैं। जिस तरह विद्युत्क्षणिक है एक क्षण ठहरती है दूसरा क्षण नहीं इस तरह सारे ही भाव जो हमें स्थिर प्रतीत हो रहे हैं यह सब क्षण २ में ही बदल रहे हैं। एक अवस्था में एक पल नहीं ठहरते इसलिये बड़ी २ कठिन वस्तुएँ भी समय पाकर छोटी होती जाती हैं। रुई कोई वस्तु न बढ़ती या घटती है एक क्षण भी ठहरी नहीं रह सकती है। इसलिये पहले क्षण में जो भाव होता है वह दूसरे में नहीं रहता। यह जो प्रतीती होती है कि यह वही है। यह सदृश होने से होती है जैसे दीपक लौ क्षण २ में बदलती है पर वही प्रतीत होती है। नख और केश नये २ फूट कर भी वही प्रतीत होते हैं वस्तुतः जैसे एक नदी का प्रवाह बढ़ता चला जा रहा है एक क्षण भी नहीं ठहरता। इस तरह अन्दर विज्ञान की धारा बह रही है और बाहर इन भावों का प्रवाह बह रहा है। और बढ़ता चला

जा रहा है एक क्षण भी ठहराव नहीं सारे भाव अर्थ क्रिया कार्य हैं। अर्थ क्रिया कार्य होना किसी कार्य की उत्पत्त करना भाव वा सत्य का लक्षण है अर्थ क्रिया कार्य होना अक्षणिक में नहीं घट सकता अर्थ क्रिया के करने के समय आगामी अर्थ क्रियाओं का सामर्थ्य उसमें है वा नहीं ? यदि है तो उस कार्य की उत्पत्ति उसी क्षण होनी चाहिये। क्योंकि जो जब जिसके करने में समर्थ है वह उस समय करता है। सामग्री अपने आप कार्य को उत्पन्न करती है। यदि उसमें उनके करने का सामर्थ्य ही नहीं है तो कभी भी उत्पन्न न करे जैसे पत्थर का टुकड़ा अंकुर को उत्पन्न नहीं कर सकता। समर्थ कारण भी दूसरे सहकारियों के मिलने पर कार्य करता है। जब जैसे सहकारी मिलते हैं तब वैसा कार्य होता है। सहकारी कारण उस बीज में कोई अतिशय विशेषता डालते हैं वा नहीं ? नहीं तो बीज वैसा का वैसा ही है। यदि डालते हैं तो मानना पड़ेगा कि पहला बीज जिसमें अतिशय नहीं था वो निरर्थ होगया। अतिशय वाला नया बीज उत्पन्न हुवा उसका क्षणिक होना सिद्ध हो गया इसी अतिशय वाले बीज को कुर्वद्रूप कहते हैं विज्ञान क्षण २ में अपना आकार बदलता है। इस क्षण में नील का विज्ञान है तो दूसरे क्षण में पीत के विज्ञान की एक धारा है जिसके आकार बदलते हैं पर विज्ञान धारा अविच्छिन्न रहती है। किसी समय बाहर के रंग से रंगी हुई है जब बाहर के विषयों का प्रतिभास उसपर पड़ता है। चित्त बाहर के रूपों को जानता हुवा साथ तदाकार हो जाता है नील को जानता हुवा नीलाकार और पीत को जानता हुवा पीताकार हो जाता है। इसी विज्ञान को प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं। मैं हूं मैं हूं इस विज्ञान को आलयविज्ञान कहते हैं। आलय विज्ञान की धारा सुषुप्ति में भी बनी रहती है और परलोक में भी जाती है। विज्ञान क्षण २ में बदलता है तो कर्म फल का नियम स्मृति का नियम कैसे होगा ? क्योंकि एकके कर्मका दूसरे को फल मानने में और एकके अनुभव की दूसरे को स्मृति मानने में कोई व्यवस्था नहीं रह सकती। इसका उत्तर यह है कि पूर्व २ विज्ञान उत्तर २ विज्ञान में अपनी २ वासना देता चला जाता है। हर एक विज्ञान अपनी सन्तान सिलसिले में वासना देता है अन्य में नहीं इसलिये अव्यवस्था नहीं होती जैसा कहा है–

यस्मिन्नेव हि सन्तान आहिता कर्म वासना।
फले तत्रैव संधत्ते कार्पासे रक्तता यथा॥

जिस सन्तान में कर्म वासना डाली गई है वहां ही कर्म को उत्पन्न करती है जैसे कपास में लाली। इन्हीं वासनाओं के अनुसार जन्म होता रहता है। वासनाओं का उच्छेद होकर विमल विज्ञान की धारा का बहना मोक्ष है।

प्रश्न–ज्ञान ही एक वस्तु है तो उसमें प्रमेय, प्रमाण, प्रमा प्रमाता अलग २ क्यों होते हैं। एकही में कैसे घट सकेंगे। उत्तर–ज्ञान क्षणिक और साकार है विज्ञान का स्वरूप जो अपने आकारों से युक्त है वह प्रमेय है। प्रमेय का प्रकाशना प्रमाण का फल प्रमा है। प्रकाशने की शक्ति का आश्रय प्रमाता है। जहां साधन काम करता है वहीं उसका फल होता है। ऐसा नहीं होता कि कुल्हाड़ा तो नीम पर मारा जाय और छेद दाख में हो जाये इसी प्रकार नहीं हो सकता कि प्रमाण का काम बाहर के पदार्थों में हो और फल प्रमा अन्दर विज्ञान के आश्रय उत्पन्न होजाय। इसलिये प्रमाण और फलका समानाधिकरण एकाश्रय होना चाहिये। यह तब हो सकता है जब प्रमाण और फल दोनों अन्दर ज्ञानरूप ही हों। धर्म यदि धर्मी से

भिन्न है तो जैसे दो धर्मियों का परस्पर धर्म धर्मी भाव नहीं होता अत्यन्त भिन्न होने से। अभिन्न मानो तो अभिन्न होने से धर्मधर्मी भाव नहीं रहता। इसलिये बाहर कोई अर्थ है ही नहीं। एक साथ दोनों का नियम से उपलब्ध होना विषय और ज्ञान का अभेद सिद्ध होता। है दूसरा चन्द्र जो नेत्र के मलने आदि से दीखता है नियम से एक चन्द्र के साथ ही उपलब्ध होता है पहले सहोपलम्भन है। भेद भ्रान्ति से दीखता है। यदि बाहर कोई अर्थ नहीं तो प्रतीती में विचित्रता कैसे होती है। उत्तर-वासना की विचित्रता से। जैसे स्वप्नादि में विचित्रता होती है कभी कुछ दीखता है कभी कुछ इस प्रतीती में बाह्य विषय हेतु नहीं होता किन्तु ज्ञानगत विचित्र वासना ही हेतु होती है। ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं आती प्रत्युत लाघव है।

यत् अन्तर ज्ञेयं रूपं तत् बहिर्वदवभासते।

जो अन्दर जानने योग्य रूप है वह बाहर की नाईं प्रतीत होता है। जब जाग्रत में पहले बाहर अर्थ को देखता है तो उसकी वासना उत्पन्न होती है फिर उसमें स्वप्न में बिना अर्थ के प्रतीती हो सकती है। पर जब जाग्रत की प्रतीती वासना से होती है तो वासना किससे उत्पन्न होती है। इसका उत्तर यह है कि अनादि सन्तान के अन्तर गत पूर्व जो नील ज्ञान है वही वासना है। उसके बाससे अनेक क्षणों का व्यवधान होने पर भी फिर नीलाकार प्रतीती होती है जैसे बीजकी वासना से कपास में रकता होती है।

पूर्णावतार

[ले०—श्री बलदेव प्रसाद मिश्र]

गोपी-हिय-पागर के मीन, जगारुढा कच्छ,
कंस-हिरनाच्छ को बराह वपुधारी हौ।
पार्थ-प्रह्लाद दुःख मेटन नृसिंह,
दधि दूध मांगिवे में बने बावन मुरारी हौ।
कुरु यदु वंस के विरोधन को जामदग्नि,
कर्म-योग-रूप राम अवध विहारी हौ।
बुद्ध से दयालु, कल्कि ही से हौ व्यवस्था वारे,
दस अवतार गुन पूरे अवतारी हौ॥

जनक विदेह का जीवन चरित्र

राजा जनक उस बालक के ऐसे वचन सुन कर बड़े अचम्भे में पड़गये और इस पुकार कहने लगेः-

राजा-हे बाल कुमार ! तू कौन है, तू ने मुझे पिता कैसे कहा और उस सेठानी को अपनी माता क्यों कर बताया।

बालक-महाराज ! आप मेरे पूर्व जन्म के पिता हैं आपका नाम उस जन्म में प्रज्ञान देव था। विश्वपुरी के आप महाबली नरेश थे। आपकी स्त्री (मेरी माता) का नाम सुमति देवी था। और आपके पुत्र का (मेरा) नाम मोहान्ध सेन था। सुविचार शील ब्राह्मण की विधवा कन्या मेरी स्त्री थी, उसका नाम शीलवती था। आपको उससे पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों का फल यह था कि आपको उस जन्म में ज्ञान प्राप्त होगया था। आप साधु सेवा परायण थे। एक सहस्र अतिथियों का प्रतिदिन सत्कार करके पीछे आप भोजन करते थे, मेरी माता बड़ी पतिव्रता और विदुषी थी। साधु सेवा में वो भी तत्पर रहती और उपदेश सुना करती थी मेरी स्त्री भी आप दोनों की आज्ञा पालती थी। परन्तु मैं आपसे विपरीत था। मैं साधु भोजन का मस्त पूंओं की तोंद भरना और हरिचर्चा को पागल समझता था। आप यद्यपि संसार को मिथ्या मानकर मोहित न थे। तथापि तीव्र वैराग्य और आत्म साक्षात्कार या प्रेम लक्षण भक्ति के अभाव से मुक्ति के अधिकारी नहीं थे। इसी से आपको पुनर्जन्म हुआ। दैव वशात् आपके राज्य में घोर दुष्काल पड़ा। १२ वर्ष तक वर्षा न हुई, आपकी प्रजा भाग गई। पूरी रक्षा न हो सकी जो क्षत्रियों का परम धर्म है और दुष्काल के प्रभाव से आपको भी राज्य छोड़कर अन्यत्र जाने की आवश्यकता होगई।

आप और मेरी माता-मैं और मेरी स्त्री हम चारों वन में पहुंचे, १२ दिन बीत गये अन्न का दाना न मिला। हम लोग विन्ध्याचल के जंगल में गिरते पड़ते जा पहुंचे। वहां एक योगी का आश्रम दिखाई पड़ा। उसके पास ही एक कुटिया थी उसमें विश्राम किया। मध्यान्ह में उस आश्रम के निकट एक वृक्ष पर लटकते हुए भोज्य पदार्थों के भरे हुए चार पारस दृष्टि गोचर हुए, उन्हें देखकर मेरा मन तो ललचाया परन्तु आपकी आज्ञा बिना हाथ नहीं लगा सका। थोड़ी देर में वो चारों भोजनपात्र हमारे पास आके रक्खे गये और यह शब्द सुनाई दिया कि राजा प्रज्ञान देव यह भोजन पात्र तुम्हारे लिये ही हैं इनको स्वीकार करो। ११ दिनका उपवास हो चुका था इस पर भी आपको इतना धीरज था कि नदी में स्नान कर आये फिर चारों पारस आपने एक एक चारों के सामने रख के ग्रास तोड़ने के पहले मनमें सोचने लगे कि मुझसे भी अधिक क्षुधातुर कोई अतिथी होता तो उसे भोजन कराके मैं भोजन करता। इतने में एक शब्द सुनाई दिया और एक साधु दौड़ा हुआ चला आया उसी का

यह शब्द था कि अरे मैं एक महीने से भूका हूं कोई भोजन दो, मेरा प्राण भूक के मारे जाना चाहता है. मैंने ग्रास हाथ में लिया ही था कि वो आ पहुंचा। आपने बड़े हर्ष पूर्वक अपना भोजन पात्र उस अतिथि को देदिया और वह उस सारे भोजन को झट ही चट करके बोलाकि अभी पेट नहीं भरा तब आपने मेरी माता को आज्ञा दी उसने मन मैला करके कुछ बढ़ बढ़ाकर अपना पात्र उस अतिथि को देदिया। वो उसे भी चट करगया फिर भी भूका रहा तब आपने मेरी स्त्री की तरफ इशारा किया। उसने चुराके दो ग्रास उसमें से खालिये और मन ही मनमें उस साधु को दुर्वचन कहते हुए अपना पात्र भी उसके सामने सरका दिया। उसने वो पात्र भी खाली करदिया और संतुष्ट न होकर और मांगा तब मुझे बड़ी चिन्ता हुई। मैं अपने पात्र का भोजन खाने लगा। परन्तु उस भूके अतिथि ने झपट कर मेरे साथ २ मेरे पात्र में भोजन करना आरंभ करदिया। लुटेरे की भांति टूट के पड़ा। तब मुझ से नहीं रहा गया। मैंने उसके हाथों से छीन कर तथा उसने जो मुख में रखलिया था उसके मुंह से निकाल कर खाया और लातें मारकर उसका बड़ा ही तिरस्कार करदिया आपने बहुत रोका तो भी मैंने कुछ पर्वाह न की। वह साधु अन्तर्धान होगया परन्तु आप तीनों के शरीर में अतिथि सत्कार के पुण्य प्रताप से बल आगया और आनंद से भूक प्यास सब मिटगई। मैं अति बल हीन और भूका प्यासा व्याकुल होकर अति अशक्त होगया कुछ दिनों के बाद दुर्भिक्ष निवृत्त होगया और हम चारों राज महल में आ बसे। और प्रजा भी आकर आबाद होगई। आप सत्कर्म फल इच्छा रहित करते और ब्रह्मार्पण करदेते थे इसीसे फिर भी आप महाराज हुए परन्तु आत्म साक्षात्कार आप को नहीं होने पाया और न आपको भक्ति प्रेम लक्षणा ही प्राप्त हुई इससे मुक्ति नहीं हुई। तथापि पूर्व जन्म के सत् कर्मों के प्रभाव से आपको अपने पूर्वजन्म की खोज और वैराग्य हुआ।

मेरी माता पतिव्रता और साधु सेवादि धर्म परायण थी इससे उसे भूत भविष्य का ज्ञान तो है, परंतु उस महात्मा को उसने भोजन पात्र देते वक्त जो मन मैला किया इस कारण इस जन्म में राज-रानी न होकर सेठानी अर्थात् नगर सेठकी स्त्री हुई।

और मेरी स्त्री ने जो छिपाकर भोजन पात्र में से दो ग्रास खाकर अपनी उच्छिष्ट महात्मा को दी और वो भी मनमें बुरा मानकर। इस कारण वो विधवा हुई। और मैं सर्वदा साधु सेवा के विरुद्ध उस जन्म में रहा और महात्मा का तिरस्कार किया इसे हेतु से बारम्बार जन्म लेता और मरता हूं। जन्म मरण के कष्ट सहन कर रहाहूं मुझे जो पूर्व जन्म का स्मरण है यह केवल उसके मुख से निकाल कर जो अन्न मैंने खाया था उस का फल मिला है। वो महात्मा बड़ा सिद्ध योगी था। उसके अपमान तथा अपने दुष्कर्मों का फल मैं भोग रहा हूं आप निष्काम कर्मों के करने और ब्रह्मार्पण प्रसादी पाने से पुनः राजा हुए हैं।

ब्रह्मार्पण और निष्काम असंगता पर एक दृष्टान्त सुनाता हूं—

(दुर्वासा और श्रीकृष्ण)

एक समय व्रज गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण प्रभु को उत्तम प्रीत भोज्य आरोगवाने (खिलाने) का विचार करके अपने अपने घरों से नाना प्रकार के व्यंजन बनाके प्रियतम से विनय करने लगी कि आप हमारे हाथ की तैयार की हुई सामग्री आरोगिये।

भगवान् ने कहा कि हम तो तुम्हारे निकट ही हैं चाहे जब पालेंगे। आज तो हम भोजन करके तृप्त हो रहे हैं। और दुर्वासा मुनि बड़े महात्मा हमारे मेहमान हैं यह भोजन उनको कराओ इसमें तुम्हारा बड़ा कल्याण है। वे मुनिराज जमना के उस पार ठैरे हुए हैं। गोपियों ने कहा, महाराज हम आपकी दासी आज्ञा पालक हैं जैसी आज्ञा आपकी होगी उसे हम पालन करने को तैयार हैं परन्तु जमना जी चढ़ी हुई हैं कोई नौका भी इस समय दीख नहीं पड़ती पार कैसे आवें। आप बोले कि इसका सहज उपाय यह है कि तुम श्री जमुना जी के तटपर खड़ी होके प्रार्थना करो और यह बात कहो कि यदि कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हो तो हमें रास्ता देदो। गोपियों ने ऐसा ही किया और उनके शब्द सुनते ही यमुना जी ने मार्ग देदिया। गोपियों ने बीसियों थाल भोजन सामग्री के मुनिराज के सामने रख दिये और विनय की कि महाराज कृपा करके आ लीजिये! मुनिराज ने प्रसन्न होकर सारी सामग्री क्षण भर में स्वाहा करली और खाली थाल गोपियों को देदिये। गोपियों ने कहा महाराज हम वापिस कैसे जायें, जमना चढ़ रही है। तब दुर्वासा जी ने पूछा उधर से कैसे आईं उन्होंने कहदिया कि ऐसे शब्द कहने से मार्ग मिलगया। तब मुनिराज बोले कि तुम सब जमना जी से यह कहो कि यदि दुर्वासा मुनि कुछ भोजन नहीं करता तो हमें मार्ग देदो। गोपियों ने यह शब्द ज्यों जमना जी से कहे तुरन्त ही जमना उतर गईं मार्ग मिलगया। गोपियों को बड़ा भारी अचरज हुआ और सब ने मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि महाराज आप हम लोगों के साथ नाना प्रकार की क्रीडा करते हुए भी बाल ब्रह्मचारी कैसे। और दुर्वासा जी ने हमारे समक्ष हमारे भेट किये हुये विविध भोजन पाये फिर भी वो अभोक्ता क्यों कर जमना जी ने मान लिये। इसके उत्तर में प्रभुजी हंस कर बोले गोपियो तुम अध्यात्म ज्ञान से अपरिचित होने के कारण सदेह ग्रस्त हो। जो प्राणी पूर्ण तत्व वेत्ता ज्ञानी है जिसको शरीर में आत्म अध्यास नहीं और अहंकार से रहित होकर बुद्धि जिसकी लिप्त नहीं होती और जितने कर्म करता है ब्रह्मपरायण करके फल की इच्छा नहीं रखता ऐसा मनुष्य सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता ही है। यदि उसके हाथ से समग्र लोकों का वध भी हो जाय तो न वो मारने वाला कहा जायगा और न बंधन में ही पड़ेगा।

यस्य नाऽहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमान्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

गोपियों का समाधान होगया :-

सम्पूर्णम्

"श्याम"

(लेः श्री श्याम विरही)

हृदय के कुंज कूल कोमल कुहुक रहे, दमक रहे हैं अभु बुन्दें सुषमा के धाम॥
प्रेमियों के प्रेम भरी आह की अवाई में तूं, व्यस्त से बने थे; वह धन्य देव तेरा नाम॥
आज अस्त अुपदा के नहीं पट छोर छुटे, आह से डबारा गज; मोहन तुम्हारा काम।
दृग्नि अधीर दीन; नेह भीख मांग रहा, रीझ बार देख रूप सांवला सलोना श्याम॥

श्री राम चरित मानस में प्रबंध की विचित्रता

[लेखक—महावीर प्रसाद बजरंगबली श्रीवास्तव]

कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी।
जेहि विधि शंकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई।
कथा प्रबंध विचित्र बनाई॥
कल्प २ प्रति प्रभु अवतरहीं।
चारु चरित नाना विधि करहीं॥
तब तब कथा मुनीशन्ह गाई।
परम विचित्र प्रबंध बनाई॥

श्री राम चरित मानस की उपरोक्त चौपाइयों में प्रबंध की विचित्रता का अर्थ प्रायः यह समझा जाता है कि कई कल्प के अवतारों की कथा को एक ही में मिलाकर गोस्वामी जी ने श्रीराम चरित मानस प्रबंध की विलक्षण रचना की है। पर ऐसी कल्पना करने से अवतार हेतु प्रकरण से स्पष्ट विरोध पड़ता है क्योंकि अवतार हेतु प्रकरण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि श्री राम चरित मानस की कथा उस अवतार की है जिसमें सती जी को मोह हुआ था और मनु शतरूपा का वरदान तथा भानुप्रताप का रावण होकर पृथ्वी पर अधर्म का विस्तार करना यह दो उस अवतार के मुख्य कारण हैं।

अतएव प्रबंध की विचित्रता के सम्बंध में कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रबंध की विचित्रता का अर्थ यही नहीं, कि एक कल्प के अवतार की कथा में बीच २ में उस कल्प के अवतार की शृंखला बद्ध कथा को छिन्न भिन्न करके उसकी जगह दूसरे कल्प की कथायें जोड़ दी जायं, और वह भी इस तरह कि किसी को पता भी न चले, कि किन किन स्थलों पर कहां से कहां तक दूसरे कल्पों की कथा मिली हुई है।

किन्तु प्रबंध की विचित्रता एक कल्प के चरित्र में ही हो सकती है एक कल्प के ही चरित्र को भिन्न २ मुनि भिन्न २ दृष्टि कोण से अनेक प्रकार से प्रबंध बद्ध करके गान कर सकते हैं। दृष्टि कोण की भिन्नता यह कि जैसे—

१. किसी मुनि ने इतिहास की दृष्टि को ही प्रधान रखते हुये चरित्र का गान किया ऐसे प्रबंध में प्रधानता ऐतिहासिक दृष्टि की ही होगी जहां पर जो बात जिस तरह हुई होगी, वैसी की वैसी ही इस प्रबंध में लिखी जायगी।

२. किसी प्रबंध में भगवान की नर लीला के साथ उनके ऐश्वर्य भाव को प्रगट करने पर विशेष दृष्टि होगी। प्रबंध में नर नाट्य गत इतिहास के साथ ही साथ भगवान् के ऐश्वर्य सूचक गुप्त चरित्रों का भी वर्णन होता जो चरित्र कि गुप्त रूप से अपने भक्तों के साथ अवतार समय में घटित हुये हैं।

३. किसी प्रबंध में कवि का कोई मुख्य प्रयोजन उद्देश्य होगा। ऐसे प्रबंध में जिन चरित्रों से

कवि के उद्देश्य की पुष्टि होगी उन्हीं का वर्णन प्रधान होगा अन्य चरित संक्षेप में होंगे।

४. किसी प्रबंध में इतिहास के साथ ही साथ भगवान के ऐश्वर्य उनके सौशील्य वात्सल्य-सौन्दर्य आदि गुण तथा चरित्र के पात्रों द्वारा संसार के लोगों को धर्म व आदि का पथ दिखाने आदि पर विशेष ध्यान होगा। ऐसे प्रबंध में इतिहास के साथ ही साथ यथास्थान उपरोक्त सब बातें बिलकुल स्पष्ट होती जायगी।

इत्यादि २ यही सब प्रबंध की विचित्रता है इस तरह से एक कल्प के ही चरित्र के अनेक प्रबंध हो सकते हैं।

इस प्रकार प्रबंध की विचित्रता का भाव समझने के लिये उदाहरण रूप से देखना चाहिये कि एक तुलसीकृत रामायण के ही कितने प्रबंध आज तय्यार हो रहे हैं।

कोई सटीक रामायण लिखते हैं तो कोई शंकाओं को चुन कर शंकावली रामायण तय्यार करते हैं कोई रामायण के चार संवादों के प्रश्नों को चुन कर उनका उत्तर रामायण की चौपाइयों से स्पष्ट करते हुये प्रश्नोत्तरी रामायण का रूप देते हैं इत्यादि इत्यादि।

यही सब प्रबंध की विचित्रता का भाव है न कि कई कल्प की कथाओं को एक में मिलाकर कहा था। इस प्रकार श्रीराम चरित्र मानस में एक कल्प का चरित्र ही विचित्र कथा प्रबन्ध बना कर कहा गया है।

सारांश यह कि उपरोक्त चौपाइयों में प्रबंध की विचित्रता' का भाव लेकर भी 'श्रीराम चरित मानस में कई कल्प की कथाओं की मिलावट अनुमान करना उचित नहीं। क्योंकि अवतार हेतु प्रकरण से श्रीराम चरित मानस में शुद्ध एक कल्प अवतार की कथा स्पष्ट है।

रामचरित मानस

यह कहा जाता है कि जब वेद समझने वालों की कमी होगई तो वाल्मीकि जी ने रामायण लिखी पर जब संस्कृत पढ़ना भारी मालूम देने लगा तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम चरित मानस लिख कर बड़ा ही उपकार किया है। इस ग्रन्थ में गीता उपनिषद् आदि सबका सार है, इस में चार वेद, अठारह पुराणों का सार कूट २ कर भरा है। देखिये रामचन्द्र जी अपनी प्रजा को क्या उपदेश देते हैं:-

"यह देह विषयों के वास्ते नहीं है, सुख तो थोड़े हैं, फिर जब पुण्य क्षीण होजाते हैं तो दुःख ही दुःख है, इस देह को पाकर विषयों में मन लगाना अमृत को छोड़ कर विष लेना है। यह जीव काल कर्म स्वभाव और गुणों के अनुसार

चौरासी लाख [illegible] है, पर जब भगवान् की कृपा होती है तब यह मनुष्य देह मिलती है। यह संसार सागर को पार करने को एकही नौका रूप है। जब इसको भगवान् की कृपा रूपी सन्मुखी पवन मिली और सद्गुरु रूप मल्लाह खेने को मिला तो बेड़ा पार होजाता है। यह मनुष्य का देह साधनों का स्थान है और मोक्ष का द्वार है। बड़े भाग्य से मिलता है देवता लोग भी इसके वास्ते तरसते हैं। जिस मनुष्य ने इसे पाकर परलोक न सम्भाला तो वह अंत को दुःख पाता है और सिर धुन २ कर पछताता है तथा काल कर्म और ईश्वर को झूट मूट दोष लगाता है। भाई! यदि यहां और परलोक में सुख चाहते हो तो मेरी भक्ति करो ज्ञान अति कठिन है उसमें बड़े २ विघ्न हैं। मनके स्थिर न होने के कारण उसका साधन बहुत ही कठिन है। बहुत कष्ट पाकर यदि सफल भी होजाय तो भक्ति के बिना मुझे उतना प्यारा नहीं भाता। भक्ति स्वतन्त्र है सब गुणों की खान है सत्संग से प्राप्त होती है। संत बड़े पुण्य से मिलते हैं और उनका संग ही आवागमन से छुटाने का एकही मार्ग है। मन क्रम और वचन से संत चरणों की पूजा करना ही पुण्य है। गुप्त मंत्र यह है कि महादेव जी का भजन करो। बिना उनके भजन के मेरी भक्ति दुर्लभ है। भक्ति मार्ग में कोई परिश्रम नहीं है। न यज्ञ चाहिये, न योग, न जप, न तप, न उपवास, केवल सरल स्वभाव, मनमें कुटिलता का अभाव और जो कुछ प्राप्ति हो उसी में संतोष होना चाहिये।

"कहहु भक्ति पथ कवन प्रयासा।
योग न मख जप तप उपवासा॥
सरल स्वभाव न मन कुटिलाई।
यथा लाभ संतोष सदाई॥

यदि परमानन्द के सुख अनुभव करना चाहो तो ममता मद से रहित होकर मेरे गुणों के समूह और नाम में प्रीति करो।

ज्ञान, विराग, माया, भक्ति, ईश्वर जीव का भेद आपने कितनी सरलता से समझाया है। आप आप कहते हैं।

मैं अरु मोर तोर तें माया।
जेहि वश कीन्हें जीव निकाया॥
गो गोचर जहं लगि मन जाई।
सो सब जानो माया भाई॥"

भाई मैं, मेरा तेरा यही माया है। इन्द्रिय और इंद्रिय के परे जहां तक मन की गति है सब माया ही जानो। इसी मैं मेरे तेरे ने सब जीव वश कर रखे हैं। जिसे ज्ञानि कुल विद्या आदि के मानो में से कोई भी मान नहीं है उसी को ज्ञानी कहते हैं और जो तीनों गुणों से परे हो जाता है और सब सिद्धियों को तृण के समान त्याग देता है उसी को परम वैरागी कहना चाहिये। जो माया के वशमें है उसे जीव कहते हैं और जो इसके ऊपर है और इसका प्रेरक है उसी को ईश्वर कहते हैं मं करने से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान मिलता है और ज्ञान ही मोक्ष का देने वाला है पर मुझे शीघ्र प्रसन्न करने का मार्ग केवल भक्ति ही है। ज्ञान विज्ञान सब इसके आधीन हैं और यह ही अनुपम सुख के देने वाली है और संत जनों की जब सहायता होती है तभी प्राप्त होती है।

इसके साधन के उपाय यह हैं:-

१. वेदकी रीति से धर्म में चलना।
२. विषयों का विराग और मेरे चरणों में प्रीति

३. नवधा भक्ति (कथा सुनना, सुनाना, स्मरण करना, चरण सेवा, पूजन, प्रणाम, दास भाव, सखा भाव और आत्म समर्पण)।

४. मेरी लीला में विशेष प्रेम।

५. साधु चरणों में प्रीति।

६. मन क्रम वचन से भजन का दृढ़ नियम।

७. गुरु पिता, माता बंधु पति सबको मुझे ही जान कर सेवा करना।

८. मेरे गुण गान में शरीर पुलकायमान होना, वाणी का गद गद होना और आँखों से जल प्रगट होना।

निष्काम, निरभिमान और पाखंड से रहित जो मेरे भक्त हैं मैं सदा उनके वश में रहता हूं और उनका हृदय ही मेरे वास करने का स्थान है।

ईश्वर में और हम में कोई भेद नहीं है तो इसी में मेरे तेरे का जब तक यह है तब तक एक की विधि दूसरे से नहीं मिलती है और अपने स्वार्थ के वश हम अनेक हैं। पर जब भगवान् की कृपा होती है तब मनुष्य इस माया जालसे अलग हो जाता है। तब उसमें हममें कोई भेद नहीं रहता और सब एक हो जाते हैं। जैसे कि वाल्मीक जीने रामचन्द्र से कहा है "सो जाने जेहु देहु जनाई जानत तुम्हें तुम्हहि होइ जाई" हे महाराज आपको वही जान सकता है जिसके ऊपर आपकी कृपा होती है और जब वह आपको जान जाता है तो आपही बन जाता है। हे भक्त उरचन्द! आपकी कृपा से आपको केवल आपका भक्त ही जान पाता है। आप को पाने का केवल एक उपाय प्रेम है, और जब प्रेम करके आपको पालेता है आपके चरणों में प्रीति हो जाती है तो वह सबको राममय देखता है। और उसका किसीके साथ विरोध नहीं रह जाता। उसके वास्ते न कोई नीचा रहजाता है न ऊंचा उसे तो रामका प्रेमी चाहिये। निषाद के गले वैसे ही मिलता है जैसे भरत के से। वह अपने अवगुणों को छोड़ता है दूसरों के गुणों को ग्रहण करलेता है। उसको दुःख सुख एकसा होजाता है और वैसेही प्रशन्सा और गारी। वह दूसरों के दुःख देख कर दुःखी होता है और दूसरों को सुख देख कर सुखी होता है। उसमें काम, क्रोध, मद, मान, मोह, कपट, दम्भ, नहीं रहता है। वह विचार करके प्रिय सत्य वचन बोलता है और जागते सोते आपकी शरण होजाता है। उसे आपके सिवाय दूसरे की गति नहीं वह स्वर्ग नरक अपवर्ग को समान देखता है और सर्वत्र आपको धनुष और बाण लिये देखता है।

यही भक्तों का प्रेम है जो निराकार ईश्वर को भी साकार बनादेता है। कोई ऐसा रूप नहीं जिसमें उसको प्रकट नहीं होना पड़ता। इसी प्रेमके वश उन्होंने अपना प्रण छोड़ भीष्म का प्रण रखा। इसी प्रेम के वश नंगे पैर जाकर द्रोपदी की पति रखी। इसी प्रेम के वश शबरी के झूठे बेर बड़े प्रेम से खाये इसी प्रेम के वश दुर्योधन की मेवा त्याग विदुर का शाक खाया। इसी प्रेम के वश सीधे की क्रिया अपने हाथ से की। इसी प्रेम के वश गोपियों का माखन खाकर माखनचोर कहलाये। इसी प्रेम के वश अनेक जन्मों के पापों का हरण कर चीरा गण्य कहलाये हैं।

जाके हृदय भक्ति जस प्रीती।
प्रभु तेहि प्रगट सदा यह रीती॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेमते प्रगट होहि मैं जाना॥
देश काल दिशि विदिशिहु माहीं।
कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित विरागी।
प्रेमते प्रगट होहि जिमि आगी॥

ईश्वर कहीं दूर नहीं है वह आपके हृदय में है, सर्वत्र है, सबमें है थोड़े प्रेम की कमी है। सबा प्रेम हुआ वह आगकी तरह प्रकट हुआ। इति।

योग-साधन

[ले०-श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

९४३. बुद्धिमान आँखों द्वारा हंसता है। मध्यम श्रेणी के मनुष्यों की हंसी दान्तों और होठों तक सीमित रहती है। निम्न श्रेणी के आदमी खिल खिलाकर हंसते हैं परन्तु मुनीश्वर न कभी हंसते हैं न मुसकराते हैं।

९४४. मृत्यु वस्त्र बदलने की भान्ति है और उत्पत्ति भोजनालय में सम्मिलित होने के तुल्य है।

९४५. यदि खाली बन्दूक बिना गोली की हवा में छोड़ दी जावे तो उसका कुछ फल नहीं होगा, इसी प्रकार जिस मनुष्य ने परमात्मा का साक्षात्कार नहीं किया है उसके व्याख्यानों और शब्दों का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

९४६. लुहार लोहे की सलाख को अहरन पर रख कर पीटता है और अपने उपयोग में लाने के योग्य औज़ार बनाने के लिए उसे भान्ति २ से कूटता, पीटता है तब कहीं वह काम का औज़ार बनता है इसी प्रकार परमात्मा जीवों को शुद्ध होने के लिए भान्ति २ के अवसर प्रदान करता है और उनके शरीर और मनों को अपनी लीला कराने के योग्य बनाता है।

९४७. आशा मूढ़ पुरुष को उत्साहित करती रहती है। हवाई किले बनाने से सरल संसार में कोई भी काम नहीं है।

९४८. जिस पुरुष के एक ही पुत्र हो और वह मरजावे तो वह उसे एक बार फिर देखने के लिए बहुत लालायित रहता है। वृद्धा स्त्री को पुत्र होने की लालसा बड़ी ही रुचिकर होती है। जवान लड़कियों की विवाह करने की बड़ी भारी उत्कण्ठा होती है और यदि वह इस सम्बध की चर्चा भी सुन पाती हैं तो उनको बड़ा ही आनन्द और उत्साह होता है।

९४९. सुख और दुःख से पूर्व आन्तरिक राग व द्वेष के विचार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होते हैं। शर्दी, गर्मी के लगने या बाह्य पदार्थों से सम्बन्ध होने से मनुष्य के हृदय में परिवर्तन होता है और उसी से सुख, दुःख होजाता है। तत्त्वज्ञानी जीनो के शिष्य स्टोईक और हिन्दू वैरागी अपने शरीर का साधन करके और अपने मन और इन्द्रियों को वश में करके सुख व दुःख से लापरवाह होजाते हैं। सुख और दुःख का प्रादुर्भाव अधिकतर मन से होता है और यह मन के ही धर्म हैं। आत्मा, सुख और दुःख से अलग है। वह तो आनन्द स्वरूप है। चित्त पर विजय प्राप्त करके आत्मा के आनन्द का उपयोग किया जा सकता है।

९५०. मृत्यु की अग्नि को ज्ञान रूपी जल से शान्त किया जा सकता है। ज्ञान आत्मा का ध्यान करने से प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान स्वतंत्रता में बाधा नहीं देता, यह स्वयं स्वतंत्रता है।

— —

भजन

[संग्रहकर्ता--श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी]

साधो निन्दक मित्र हमारा ॥ टेक ॥
निन्दक को निकटे ही राखौं,
होन न देऊं नियारा ॥ १ ॥
पाछे निन्दा करि अघ धोवै,
सुन मन मिटै विकारा ॥
जैसे सोना तपै अगिन में,
निर्मल करै सुनारा ॥ २ ॥
घन अहरन कसि हीरा निघटै,
कीमत लच्छ हजारा ॥
ऐसे जांचत दुष्ट सन्त कूं,
करन जगत उजियारा ॥ ३ ॥
जोग यज्ञ जप पाप कटन हितु,
करै सकल संसारा ॥
बिन करनी मम कर्म कठिन सब,
मेटै निन्दक प्यारा ॥ ४ ॥
सुखी रहो निन्दक जगमांहीं,
रोग न हो तन सारा ॥
हमरी निन्दा करने वाला,
उतरै भवनिधि पारा ॥ ५ ॥
जिनन्दक के चरणों की अस्तुति,
भाखौं बारम्बारा ॥
चरनदास कहै सुनियो साधो,
निन्दक साधक भारा ॥ ६ ॥

२

मेरे मन भैया राम कही रे ॥ टेक ॥
राम नाम मोहि सहज सुनावै,
उनही चरन मन कीन रहीरे ॥ १ ॥
राम नाम ले सन्त सुहावै,
कोई कहै सब सीस सहीरे ॥ २ ॥
वाही सों मन जोरे राखौ,
नीके रासि लिये निबहीरे ॥ ३ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै,
पाप निछेदन सोई लहीरे ॥ ४ ॥
दादू रे जन हरि गुण गावो,
कालहि जालहि फेरि दहीरे ॥ ५ ॥

३

निरहणि को सिंगार न भावै,
है कोई ऐसा राम मिलावै ॥ टेक ॥
बिसरे अंजन मंजन चीरा,
बिरह बिथा यह व्यापे पीरा ॥ १ ॥
नीसत थाके सकल सिंगारा,
है कोई पीड़ मिटावन हारा ॥ २ ॥
देह गेह नहीं सुधि शरीरा,
निसदिन चितवत चातक नीरा ॥ ३ ॥
दादू ताहि न भावत आना,
राम बिना भई मृतक समाना ॥

REGD No. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य ॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,, ।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्	।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,, =)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,, =)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,, =)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,, =)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,, ॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,, =)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,, =)।
१२.	शब्दसंग्रह	,, =)॥
१३.	सारसंग्रह	,, ।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,, ।=)
१५.	मनुस्मृति सार ...	,, ॥)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,, ॥=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,, ॥=)
१८.	भगवदंक	,, ॥।)
१९.	गवांक	,, १)
२०.	महात्मांक	,, १)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिए।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।